मार्च 1992

तीन रुपये

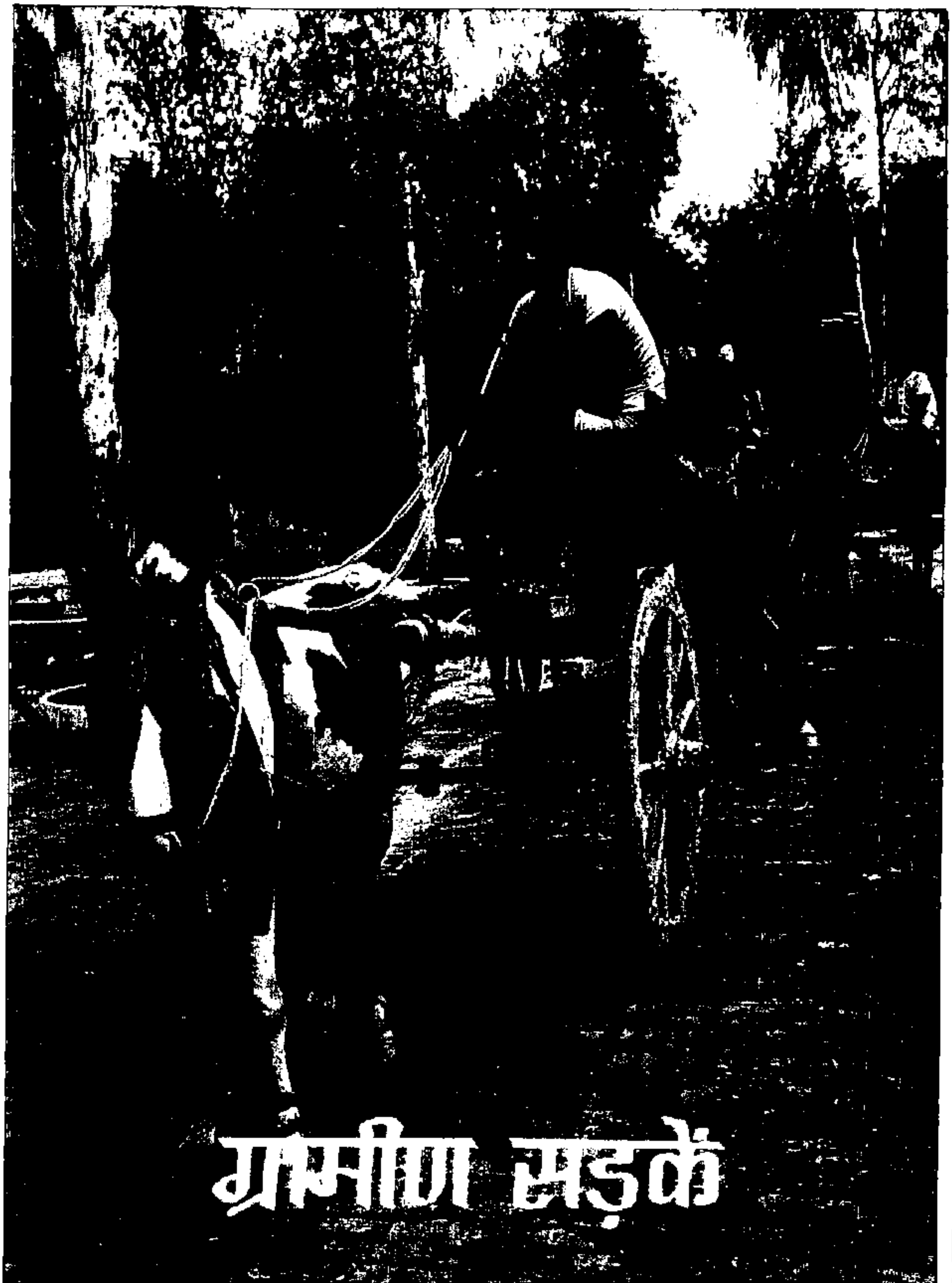

वर्ष -37, अंक 5 फाल्गुन-चैत्र शक 1913

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय का प्रमुख मासिक

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य, चित्र आदि भेजिए। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने व अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

फोटो साभार : फोटो प्रभाग

विषय सूची

पुनर्गठित सार्वजनिक वितरण प्रणाली — 2
अरिहन जैन

ग्रामीण सड़कें : विकास का महत्वपूर्ण साधन — 6
डॉ॰ राकेश अग्रवाल

डूंगरपुर जिले में परती भूमि विकास योजना — 9
अशोक कुमार यादव

ग्रामीण सड़कें : आर्थिक विकास के लिए जरूरी — 11
डॉ॰ जगबीर कौशिक

आर्थिक चुनौतियां और नयी व्यापार नीति — 13
राधानाथ चतुर्वेदी

ग्रामीण विकास क्या है? — 15
डॉ॰ अब्दुल रशीद

ग्रामीण सड़कें : यातायात की धमनियां — 17
वेद प्रकाश अरोड़ा

ग्रामीण आवासों के लिए मितव्ययी सफाई विधियां — 21
किशोर कुमार ठाकुर

ग्रामीण विकास में संचार माध्यमों की भूमिका — 23
हरि विश्नोई

हिमाचल के ग्राम्य जीवन में महिलाओं का योगदान — 27
डॉ॰ सुधा गर्ग

बिहार में महिला श्रमिकों की स्थिति — 30
केदारनाथ सिंह

सामाजिक संस्थाएं एवं ग्रामीण विकास — 33
डॉ॰ अभय कुमार

उत्तर प्रदेश : असीमित जल स्रोतों के मध्य प्यासी भूमि — 35
डॉ॰ राम अवतार शर्मा

बिहार में जवाहर रोजगार योजना की प्रगति — 38
डॉ॰ शिवशंकर गुप्ता

अधूरी मेहनत — 42
सलमान ज़मीर

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी यही हो।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), ग्रामीण विकास मंत्रालय, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें। दूरभाष : 384888

पुनर्गठित सार्वजनिक वितरण प्रणाली

□ अरिहन जैन □

''सार्वजनिक वितरण प्रणाली को इस तरह पुनर्गठित किया जाएगा कि देश की प्रत्येक राशन की दुकान पर जरूरी चीजें आसानी से उपलब्ध हो सकें।''

प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिंह राव

नई सरकार ने अर्थव्यवस्था में आमूल बदलाव की जो कोशिश शुरू की उससे सार्वजनिक वितरण प्रणाली भी अछूती नहीं रही। अपने कथन और वादे के अनुरूप प्रधानमंत्री श्री नरसिंह राव ने सार्वजनिक वितरण प्रणाली का दायरा बढ़वाया है। गरीबी और बदहाली तथा तमाम सुविधाओं से महरूम ग्रामीण के हित में वितरण प्रणाली पुनर्गठित की गई है। वितरण प्रणाली का दायरा व्यापक करने और बेहद जरूरत मंद लोगों को उचित मूल्य पर आवश्यक वस्तुएं मुहैया कराने के लिए एक राष्ट्रव्यापी अभियान छेड़ा गया है। गांव और वंचित तबके को प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिंह राव का नए साल का तोहफा यह पुनर्गठित सार्वजनिक वितरण प्रणाली है। इस अभियान की शुरूआत राजस्थान के रेतीले और सीमावर्ती जिले बाड़मेर से की गई है।

अभियान के पहले चरण में 1698 ब्लाकों का चुनाव किया गया है। साल-डेढ़ साल में पुनर्गठित वितरण प्रणाली देश के 5200 ब्लाकों में शुरू हो जाएगी। ब्लाकों का चयन राज्य सरकारों ने किया है। दूरदराज के ग्रामीण इलाकों, रेगिस्तानी, सूखाग्रस्त, बाढ़ग्रस्त, दुर्गम, जनजातीय और पहाड़ी इलाकों में ये ब्लाक स्थित हैं। इन क्षेत्रों की जनता तक आमतौर पर आवश्यक वस्तुएं या तो पहुंच नहीं पाती, अगर पहुंचती भी हैं तो ऊंट के मुंह में जीरे लायक।

पुनर्गठित प्रणाली के तहत 24 लाख राशन कार्ड जारी किए जाने हैं। पहले चरण में 16 करोड़ 11 लाख आबादी तक सार्वजनिक वितरण प्रणाली का फायदा पहुंचाने का लक्ष्य है। सरकार चुनिंदा ब्लाकों में उचित मूल्य की 11 हजार दुकानें खोलेगी। इसके अलावा एक हजार अतिरिक्त गोदाम बनाने का भी लक्ष्य है। ये गोदाम भी नई योजना के तहत बनाए जाने हैं। पुनर्गठित प्रणाली से सबसे ज्यादा फायदा कर्नाटक, राजस्थान और बिहार की आबादी को होगा। कर्नाटक के 94 ब्लाकों की दो करोड़ चार लाख की जनसंख्या पुर्नगठित प्रणाली से लाभान्वित होगी। लाभान्वितों की यह सर्वाधिक तादाद है। दूसरे स्थान पर राजस्थान है जहां की एक करोड़ 96 लाख आबादी को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के दायरे में लाया गया है। तीसरे नंबर पर बिहार है जहां एक करोड़ 63 लाख आबादी को फायदा होगा।

राज्यवार ब्लाकों की संख्या इस तरह से है— मध्य प्रदेश में 199, बिहार में 157, उत्तर प्रदेश में 144, उड़ीसा में 143, पश्चिम बंगाल में 129, आंध्र प्रदेश में 128, राजस्थान में 122, महाराष्ट्र में 115, कर्नाटक में 94, गुजरात में 84, और तमिलनाडु में 56 ब्लाक। हिमाचल प्रदेश और सिक्किम में सबसे कम सात और चार ब्लाकों का चयन किया गया है। पंजाब और गोआ से एक भी ब्लाक नहीं चुने गए हैं। केंद्रशासित प्रदेशों में दिल्ली, चंडीगढ़ और पांडिचेरी को पुनर्गठित प्रणाली के दायरे में नहीं समेटा गया है। अंडमान और निकोबार में कुल पांच ब्लाक हैं। इनमें दो ब्लाकों की 39,021 आबादी को पुनर्गठित प्रणाली से फायदा होगा। ये दोनों ब्लाक समन्वित जनजाति विकास कार्यक्रम के तहत चुने गए हैं। लक्षद्वीप के सभी पांचों ब्लाकों का भी समन्वित जनजाति विकास कार्यक्रम के तहत चुनाव किया गया है। इसी कार्यक्रम के तहत दादर और नगर हवेली में एक तथा दमन और द्वीव में एक ब्लाक का चयन हुआ है।

कर्नाटक के 73 ब्लाक सूखा-ग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम और 23 ब्लाक समन्वित जनजाति विकास कार्यक्रम के तहत लिए गए हैं। राजस्थान के 85 ब्लाक मरू विकास कार्यक्रम, 30 ब्लाक सूखा ग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम और 23 ब्लाक एकीकृत जनजाति विकास कार्यक्रम के तहत चयनित किए गए हैं। बिहार के 112 ब्लाकों की समन्वित जनजाति विकास कार्यक्रम और 54 ब्लाकों की सूखा ग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम के तहत पहचान की गई है।

देश भर में समन्वित जनजाति विकास कार्यक्रम के तहत 1023 ब्लाक पहचाने गए हैं। इसमें सबसे ज्यादा ब्लाक 190 मध्य प्रदेश में हैं। इसके बाद इस कार्यक्रम के तहत दूसरा, तीसरा और चौथा स्थान क्रमशः पश्चिम बंगाल 119, उड़ीसा 118 और बिहार 112 का है। सूखा ग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम के तहत देश भर में 596 ब्लाकों की पहचान की गई है इसमें सबसे ज्यादा 71 कर्नाटक में और आंध्र प्रदेश में 69 तथा बिहार में 54 ब्लाक हैं। मरू विकास कार्यक्रम के तहत राजस्थान में पहचाने गए ब्लाकों की संख्या सबसे ज्यादा 85 है। पैंतीस ब्लाकों के साथ हरियाणा का दूसरा नम्बर है। पर्वतीय क्षेत्र के सबसे ज्यादा 42 ब्लाक उत्तर प्रदेश में हैं। पश्चिम बंगाल में नौ पहाड़ी ब्लाकों की शिनाख्त की गई है।

पुनर्गठित प्रणाली की विशेषताएं

एक जनवरी 1992 से शुरू की गई पुनर्गठित सार्वजनिक वितरण प्रणाली की मुख्य बातें निम्न लिखित हैं:-

- पुनर्गठित सार्वजनिक प्रणाली के जरिए उपलब्ध कराई जाने वाली आवश्यक वस्तुएं उचित मूल्य की दुकानों तक पहुंचाने की जिम्मेदारी राज्य सरकारों की होगी।
- प्रति महीने प्रति व्यक्ति खाद्यान्न की न्यूनतम उपलब्धता सुनिश्चित की जाएगी।
- वितरण प्रणाली के जरिए दाल, तेल, चाय, नमक, साबुन भी उपलब्ध कराए जाएंगे।
- एक समयबद्ध योजना बनाकर आधारभूत जरूरतें जैसे– उचित मूल्य की अतिरिक्त दुकानें और अतिरिक्त भंडारण क्षमता की व्यवस्था की जाएगी।
- इस बात की विशेष कोशिश की जाएगी कि पुनर्गठित प्रणाली का फायदा ब्लाकों में रह रहे निर्धनतम व्यक्ति तक पहुंचे।
- पुनर्गठित प्रणाली पर सतर्कता पूर्वक नजर रखी जाएगी। इस हेतु ग्रामस्तर या उचित मूल्य की दुकान के स्तर पर सतर्कता समितियां बनाई जाएंगी।
- इस प्रणाली से फायदा पाने वाले लोगों, स्वैच्छिक उपभोक्ता संगठनों और क्षेत्र के जिम्मेदार लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करने का प्रयास होगा।
- फर्जी राशन कार्डों का पता लगाया जा रहा है। इसके लिए बाकायदा अभियान शुरू हो गया है। इसमें पुराने कार्डों की पड़ताल और नए राशन कार्ड साथ-साथ बनाते जाने की योजना है।

"सार्वजनिक विरतरण प्रणाली को और मजबूत किया जा रहा है ताकि हमारी आबादी के कमजोर तबके, खास कर देहात के गरीबों की चावल और गेहूं जैसी खाद्यान्न की मूल जरूरत पूरी हो सके।"

वित्त मंत्री डा॰ मनमोहन सिंह

तितरफा रणनीति

नए अभियान पर अमल के लिए फिलहाल सरकार ने तितरफा रणनीति बनाई है। प्रथम यह कि कुछ इस तरह की व्यवस्था की जाए कि उचित मूल्य की दुकानों की विशिष्ट आवश्यक वस्तुएं घर बैठे ही मिल जाएं, दूसरी बात यह कि उपभोक्ताओं को पूर्व निर्धारित और उचित मूल्य पर आवश्यक वस्तुएं आसानी से समय पर उपलब्ध हो जाएं, तीसरी बात यह कि प्रणाली के तहत वितरित की जाने वाली वस्तुओं का धीरे-धीरे दायरा बढ़ाया जाए और इसमें उपभोक्ता की सामाजिक और पोषण जरूरत से संबंधित रोजमर्रा की चीजें भी मुहैया कराई जाएं।

प्रधानमंत्री ने अभियान की शुरूआत करते हुए कहा कि उचित मूल्य की दुकानों के फायदेमंद नहीं होने के कारण वे प्रभावी तरीके से काम नहीं कर पा रही हैं। यह समस्या इन दुकानों में चाय, नमक, दालें, साबुन और कोयला आदि वस्तुएं बेचकर दूर की जा सकती है। इससे दुकानों को भी लाभ होगा और जनता को भी फायदा होगा। प्रधानमंत्री के अनुसार सरकार ने इस बारे में निर्माताओं से बात की है। वे रियायतीदरों पर अपना माल देने को सहमत हो गए हैं। सरकार की इच्छा है कि दुकानें गांवों में सुपर बाजार की तरह काम करें। इन दुकानों में हस्तकला की चीजें भी बेची जा सकती हैं। इससे स्थानीय दस्तकारों को भी फायदा होगा।

दर असल मौजूदा सार्वजनिक वितरण प्रणाली को भ्रष्टाचार का कोढ़ लगा है। यह प्रणाली शहरी अधिक बनकर रह गई है। कस्बों

या सड़कों से थोड़ी दूरी पर बने गांवों तक ही इस वितरण प्रणाली का फायदा पहुंचा है। दूर-दराज के गांव, जहां जाना भी मुश्किल हो, वहां तक यह प्रणाली नहीं पहुंच सकी। जो गांव बरसात में नजदीक के कस्बे से कट जाते हों या जहां के बारे में प्रशासन को सूचना भी कई-कई दिनों बाद मिलती हो उन गांवों और दुर्गम इलाकों तक अनुदानित खाद्यान्न उचित मूल्य पर पहुंचाने की गम्भीर कोशिश पहली बार शुरू हुई है। मौजूदा सार्वजनिक वितरण प्रणाली और इसके जरिए बंटने वाले चावल, गेहूं, चीनी, कोयला, जनता कपड़ा, मिट्टी का तेल, खाद्य तेल की सुगंध इन गांवों तक शायद ही पहुंची हो।

प्रधानमंत्री श्री नरसिंह राव निस्संकोच कहते हैं– पुरानी योजना में कई खामियां थीं। उसके मनचाहे नतीजे नहीं निकल सके। थोक डिपो से उचित मूल्य की दुकानों तक सामान पहुंचने में कुछ चीजें गायब हो जाती हैं। प्रधानमंत्री का कहना सच है। कई बार सार्वजनिक वितरण प्रणाली का सामान काला बाजार और जमाखोरों के यहां पकड़ा गया है। इत्तिफाक से हर साल उचित मूल्य की दुकानों की संख्या बढ़ी है। मार्च 1984 में इन दुकानों की संख्या 3,02,000 थी जो बढ़कर मार्च 1990 में 3,61,000 हो गई। पिछले वर्ष जून के अंत तक इनकी संख्या लगभग चार लाख थीं। देश की 90 लाख आबादी वाली राजधानी दिल्ली में इन दुकानों की संख्या 3,570 है।

वितरण प्रणाली को पुनर्गठित करने से पहले उसके स्वरूप को लेकर काफी विचार-विमर्श हुआ। राज्यों के मुख्यमंत्रियों, राज्यों के खाद्य और रसद आपूर्ति मंत्रियों और केन्द्र शासित प्रदेशों के अधिकारियों की बैठकें हुईं। छह महीने की लंबी मशक्कत के बाद वितरण प्रणाली का सुधरा हुआ रूप सामने आया। पिछले साल अक्तूबर में मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में आखिरकार यह फैसला कर लिया गया कि पुनर्गठित प्रणाली देश के चुनिंदा ब्लाकों में एक जनवरी 1992 से शुरू कर दी जाए। इससे पहले पिछले साल अगस्त में सार्वजनिक वितरण प्रणाली की सलाहकार परिषद की बैठक हुई थी। इसमें प्रधानमंत्री ने कहा था - सार्वजनिक वितरण की मौजूदा प्रणाली शहरी ज्यादा है। गांव तक जरूरत की चीजें नहीं पहुंच पातीं, पहुंचने से पहले ही वे गायब हो जाती हैं। लाल किले की प्राचीर से प्रधानमंत्री ने साफ-साफ कहा था कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली को गांव तक ले जाने की जरूरत है क्योंकि अभी यह प्रणाली व्यवहार में शहरी ज्यादा रही है।

यह कहना गलत नहीं है कि वर्तमान सार्वजनिक वितरण प्रणाली का फायदा शहर के लोगों को ज्यादा मिलता है। कुल आवंटित खाद्यान्न का 50 प्रतिशत– महाराष्ट्र, केरल, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल और दिल्ली में ही खप जाता है जबकि उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान और उड़ीसा जैसे राज्यों के हिस्से सिर्फ 20 प्रतिशत ही आता है। इन चारों राज्यों की पचास फीसदी आबादी गरीबी की रेखा के नीचे जिन्दगी बसर करती है। उड़ीसा, राजस्थान सूखे और अकाल की आशंका से हरदम त्रस्त रहते हैं तो बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश में बाढ़ और सूखे का आसन्न संकट हमेशा घिरा रहता है। देश में अभी भी 25 करोड़ लोग गरीबी की रेखा से नीचे जिन्दगी बिताने को मजबूर हैं। इन गरीबों में से एक तिहाई लोग ग्रामीण इलाकों में रहते हैं। पर उन तक आवश्यक वस्तुएं नहीं पहुंच पातीं। पहुंचने से पहले ही वे या तो गायब हो जाती हैं या काला बाजार में पहुंच जाती हैं। वर्ष 1970 में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के जरिए 88 लाख टन खाद्य तेल वितरित किया गया जो 1990 तक 180 लाख टन हो गया। पर गांवों के लोगों को शायद ही पता हो कि राशन कार्ड से खाने का तेल भी मिलता है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत केंद्रीय पूल से होने वाले क्षेत्रीय आवंटन में भी असंतुलन है। ब्लाकों के चयन के जरिए यह असंतुलन पुनर्गठित प्रणाली में दूर किया गया है। जैसे 1985 में, केंद्रीयपूल से वितरण प्रणाली के लिए खाद्यान्न सप्लाई अखिल भारतीय स्तर पर प्रति व्यक्ति 21 किलो था। लेकिन राजस्थान के लिए यह औसत 6.5 किलो और सिक्किम के लिए सौ किलो प्रति व्यक्ति था। हम पहले ही इसकी चर्चा कर चुके हैं कि ज्यादा गरीबी वाले राज्यों को कम हिस्सा मिलता है। मसलन बिहार में कुल गरीबी का 14 प्रतिशत हिस्सा रहता है। पर वितरण प्रणाली से मिलने वाले खाद्यान्न में उसका हिस्सा सिर्फ चार प्रतिशत था। उत्तर प्रदेश में देश की 20 फीसदी गरीब आबादी रहती है लेकिन उसे मिलता था सिर्फ 3.3 प्रतिशत। वर्ष 1985 तक अपने यहां 52 फीसदी गरीबों को रखने वाले बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश को सार्वजनिक वितरण प्रणाली की सप्लाई का 12 फीसदी ही हिस्सा मिलता था।

सन् 1986-87 में सार्वजनिक वितरण प्रणाली का चावल खरीदने का प्रति व्यक्ति औसत देशभर में इस तरह था – 630 ग्राम प्रति महीने (गांव) और 870 ग्राम प्रति महीने (शहर)। गेहूं का यही औसत 230 ग्राम प्रति महीने (गांव) और 610 ग्राम प्रति महीने

(शहर)। गरीबी वाले राज्यों में प्रति महीने गेहूँ उपलब्धता 20 ग्राम से 200 ग्राम रही। चावल के लिए यही उपलब्धता 16 ग्राम से 93 ग्राम रही। इसे हम इस तरह कह सकते हैं कि बिहार के गांवों में एक आदमी को हर महीने सिर्फ 18 ग्राम चावल मिले, उत्तर प्रदेश में उसे 16 ग्राम मिले। गांवों और गरीबों के साथ पिछले कई सालों से हो रहा यह असंतुलन पुनर्गठित प्रणाली में दूर करने की कोशिश की गई है।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के आंकड़े कहते हैं कि बिहार और उड़ीसा के ग्रामीण क्षेत्रों के 32 फीसदी परिवारों को साल भर में कुछ ही महीने दो जून की रोटी मिलती है। छह फीसदी लोगों को तो यह पूरे साल भर नहीं मिलती। इन राज्यों के शहरी परिवार इतने बुरे हाल में कतई नहीं हैं। लेकिन देश के आंकड़ों के संदर्भ में देखें तो वाकई यहां गरीबी काफी है। इसके बावजूद इन राज्यों की पुरानी सार्वजनिक वितरण प्रणाली में जबरदस्त उपेक्षा हुई है। बिहार और उड़ीसा के 75 फीसदी लोगों ने बताया भी है कि वे उपलब्ध नहीं होने के कारण सार्वजनिक वितरण प्रणाली की चीजें नहीं खरीद पाते। पुनर्गठित प्रणाली में ऐसे गरीब लोगों को आवश्यक वस्तुएं मुहैया कराने की गारंटी की गई हैं।

वर्तमान वितरण प्रणाली के जरिए गेहूँ, चावल, लेवी चीनी, खाद्य तेल, कोयला, केरोसिन और जनता कपड़ा मुहैया कराया जाता है। इनमें भी चावल, गेहूँ, चीनी और मिट्टी तेल सार्वजनिक वितरण प्रणाली की कुल बिक्री का 86 फीसदी होते हैं। बाकी 14 फीसदी दूसरी चीजें बिकती हैं। इस बिक्री में चीनी का हिस्सा 32 प्रतिशत, चावल का 28 प्रतिशत, गेहूँ का 11 प्रतिशत और मिट्टी तेल का 15 प्रतिशत हैं। बाजरा, ज्वार और दूसरा मोटा अनाज जो गरीबों द्वारा बहुतायत में खाया जाता है, सार्वजनिक वितरण प्रणाली के जरिए बहुत ही कम बेचा जाता है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली की कुल बिक्री की एक फीसदी भी इनकी बिक्री नहीं होती है। प्रोटीन के मुख्य श्रोत दालों का 0.2 प्रतिशत भी नहीं है। पुनर्गठित प्रणाली में दालें और नमक भी खासतौर पर जोड़ी गई हैं।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली ऐसी योजना है जिसमें सरकार खरीद करती है और कमजोर वर्ग के तबके को बाजार से कम दाम पर आवश्यक चीजें उपलब्ध कराती हैं। इसका मकसद यह है कि गरीब जनता को रोजमर्रा की खाने-पीने की चीजें आसानी से और उचित दाम पर मिल जाएं और वे महंगाई की मार से बच सकें। इस प्रणाली को अधिक कारगर और सुचारू रूप से चलाने के लिए सरकार हर साल बजट में खाद्यान्न सबसिडी का प्रावधान रखती है। किसी भी लोतांत्रिक सरकार को अपनी आबादी के निर्धनतम तबके को जरुरी चीजें मुहैया कराने का सामाजिक दायित्व निभाना पड़ता है। इस सामाजिक दायित्व के निर्वहन के लिए वह खाद्यान्न सबसिडी देती रही है। वर्ष 1966-67 में बजट में 61 करोड़ रूपए की खाद्यान्न सबसिडी का प्रावधान रखा गया था। यह 1985-86 में 1891 करोड़ रुपए की गई। वर्ष 1990-91 में खाद्यान्न अनुदान 2450 करोड़ रुपये था। नई सरकार ने भी खाद्यान्न सबसिडी बढ़ाकर 2600 करोड़ कर दी जबकि अंतरिम बजट में इसके लिए 1800 करोड़ का प्रावधान किया गया था।

सरकार जनवरी 1990 से ही चीनी पर सबसिडी देती आ रही है। इससे 350 करोड़ का बोझ बजट पर पड़ता है। इसके अलावा अगस्त-सितंबर से दिसंबर तक सरकार ने लेवी चीनी का कोटा हर महीने पांच फीसदी बढ़ाकर दिया। मसलन सार्वजनिक वितरण प्रणाली की 79 फीसदी चीनी गांव में खरीदी जाती है। यह अलग बात है कि किसी दूरस्थ गांव का बेहद गरीब यह चीनी भी नहीं खरीद पाता होगा।

बहरहाल, सार्वजनिक प्रणाली का दुनिया का सबसे बड़ा नेटवर्क भारत में है। अभी तक यह प्रणाली अपने मकसद पूरे करने में पूरी तरह सफल नहीं हो सकी थी। स्वार्थीजनों ने इस प्रणाली में छेद ढूंढ लिए थे। इन छेदों से गरीब के हिस्से का सामान छनकर या तो किसी जमाखोर के पास चला जाता था या फिर काला बाजार में।

पुनर्गठित सार्वजनिक प्रणाली में पुरानी योजना की तमाम खामियां दूर की गई हैं। अब इस योजना में कोई गड़बड़ी न हो पाए यह सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी राज्य सरकारों और जिला प्रशासन की होगी। सबसे महत्ता दायित्व सतर्कता समितियों पर है। ग्रामीण और शहरी स्तर पर बनी इन निगरानी समितियों को अधिक सतर्क और जिम्मेदाराना ढंग से अपने काम को अंजाम देना होगा ताकि निर्धनतम व्यक्ति तक उसकी जरूरत का सामान पहुंचे प्रधानमंत्री ने विगत दिसंबर में आर्थिक लेखकों के सम्मेलन में स्पष्ट शब्दों में कहा था - "हम जानते हैं कि पिछले कुछ दशकों में हमने भारी असमानताएं पैदा की हैं। आज हमें गरीबों का ही पहले पोषण करना होगा।"

टी-2, न्यू फ्लैट्स
श्री राम कालेज ऑफ कामर्स
मौरिस नगर, दिल्ली-7

ग्रामीण सड़कें

गांवों के विकास का महत्वपूर्ण साधन

□ डॉ० राकेश अग्रवाल □

ग्रामीण सड़कें ग्रामीण विकास का आधार है। पांच लाख 75 हजार से अधिक गांवों के देश भारत के लिए एक अच्छी सड़क प्रणाली का होना अत्यन्त आवश्यक है। कृषि एवं लघु व कुटीर उद्योगों का विकास गांवों को सड़कों से जोड़कर ही किया जा सकता है। कृषि उपज तथा कुटीर उद्योगों के उत्पादों को विपणनीय सुविधायें ग्रामीण सड़कों पर बहुत कुछ निर्भर करती हैं। गांवों को मण्डियों से जोड़कर गांवों का चहुमुंखी विकास किया जा सकता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से इस तथ्य को ध्यान में रखकर गांवों तक सड़कों का जाल बिछाने का सतत् प्रयत्न किया गया है।

ग्रामीण सड़कों के विकास की आवश्यकता

ग्रामीण सड़कों के विकास की प्रमुख आवश्यकता यह है कि इनकी सहायता से ग्रामीण क्षेत्रों की प्राकृतिक और मानवीय सम्पदा का अधिकाधिक उपयोग सम्भव है। ग्रामीण सड़कें देश की तीन चौथाई जनसंख्या के कल्याण का साधन बनती हैं। अच्छी ग्रामीण सड़क प्रणाली द्वारा खेती व लघु उद्योग-धन्धों के लिए औजारों, बीज, उर्वरक इत्यादि का यातायात सुगम हो जाता है। इससे गांवों में उपलब्ध भूमि का अधिकतम दोहन सम्भव होता है। कृषि उत्पादकता में वृद्धि होती है।

ग्रामीण सड़कें व्यापारिक फसलों को प्रोत्साहित करती हैं। किसान खाद्यान्न के अतिरिक्त उद्योगों को कच्चा माल उपलब्ध कराने वाली फसलों पर भी अधिक ध्यान देने लगते हैं। गन्ना, कपास, मूंगफली, तिलहन आदि का उत्पादन सड़क की सुविधा को ध्यान में रखकर किया जाता है क्योंकि व्यापारिक फसलों की उपज को सड़कों की सहायता से बाजार आसानी से मिल जाता है। सड़कों की सुविधा यातायात व्ययों को भी कम करती है। गांवों में नगरों के विकास का लाभ पहुंचने लगता है। गांव सड़कों द्वारा नगरों के और निकट आ जाते हैं। ग्रामीण सड़कें ग्रामीण विकास के बुनियादी ढांचे का अभिन्न अंग हैं। डॉ० रामनाथन ने ठीक ही कहा है कि ''यदि यह सच है कि सेना की शक्ति उसके पैरों में है, तो इससे भी अधिक यह सत्य है कि हमारी कृषि की शक्ति सड़कों में है।'' वास्तव में कृषि की सम्पन्नता एवं प्रगति बहुत कुछ अच्छी सड़कों के विकास पर निर्भर है।

अच्छी ग्रामीण सड़क व्यवस्था ग्रामीणों के जीवन-स्तर को सुधारने में बड़ा योगदान करती है। सड़कों से ग्रामीणों की शक्ति, समय और धन तीनों की बचत होती है। उपलब्ध पशुशक्ति, उपकरण आदि का अधिकतम उपयोग होता है। ग्रामीण वाहनों की टूटफूट कम होती है। कार्यशीलता में तेजी आती है। उद्योगों के विकेन्द्रीयकरण के अवसर बढ़ते हैं जिससे आर्थिक विकास का लाभ अधिक लोगों को प्राप्त होता है।

भारत जैसे विशाल देश में क्षेत्रफल और जनसंख्या की दृष्टि से देखा जाये तो सड़कों का अपेक्षित विस्तार नहीं दिखाई देता है। भारत में एक हजार व्यक्तियों पर सड़कों की लम्बाई 2.71 किलोमीटर है जबकि अमेरिका में 29.7 किमी०, फ्रान्स में 15.45 किमी० और जापान में 9.7 किमी० है। ग्रामीण सड़कों की दृष्टि से भी भारत की स्थिति सुदृढ़ नहीं है। विभिन्न राज्यों में भी सड़कों का विकास समान रूप से नहीं हुआ है। उत्तर प्रदेश, बिहार एवं तमिलनाडु में सबसे अधिक पक्की सड़कें हैं, जबकि राजस्थान, पश्चिमी बंगाल, असम, उड़ीसा, पंजाब और हरियाणा में सबसे कम सड़कें हैं क्योंकि इन राज्यों में या तो शुष्कता बहुत अधिक है या वर्षा बहुत अधिक होती है।

गांवों को सड़कों से जोड़ने के प्रयास

सन् 1945 में देश की न्यूनतम आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर सड़कों के विकास के लिए एक योजना बनायी गयी, जिसे ''नागपुर योजना'' का नाम दिया गया। इस योजना में सड़कों को चार वर्गों में विभाजित किया गया:- 1. राष्ट्रीय सड़कें, 2. राज्य सड़कें 3.

जिला सड़कें तथा 4. ग्रामीण सड़कें। इसी योजना के आधार पर सड़कों का विकास किया गया है। इस योजना का लक्ष्य था कि कोई भी गांव एक मुख्य सड़क से 8 किमी० से अधिक दूर न रहे। ये लक्ष्य दूसरी पंचवर्षीय योजना तक प्राप्त कर लिये गये।

तीसरी पंचवर्षीय योजना में गांवों को सड़कों की और अधिक सुविधायें प्रदान करने के लिए एक और योजना बनायी गयी जिसमें ऐसे प्रत्येक गांव को जो विकसित कृषि क्षेत्र में हैं, पक्की सड़क से 6 किमी० के दायरे में लाना निश्चित किया गया।

चौथी और पांचवीं पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीण सड़कों के विकास पर विशेष ध्यान दिया गया। राज्य सरकारों ने अपने सड़क विकास सम्बन्धी 25 प्रतिशत प्रसाधन ग्रामीण सड़कों के विकास पर व्यय करने का निश्चय किया। इस हेतु स्थानीय प्रसाधन बढ़ाकर गांवों से मण्डी तक की सड़कों के निर्माण को प्राथमिकता दी गयी।

पिछले कुछ दशकों से गांवों के विकास पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। इस क्रम में ग्रामीण सड़कों के विकास का कार्य न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम का एक हिस्सा बना दिया गया है। इस कार्यक्रम के लिए राज्यों केन्द्र शासित क्षेत्रों की योजनाओं में परिव्यय किया जाता है। छठी योजना में 1500 और इससे अधिक प्रावधान आबादी वाले सभी गांवों तथा 1000 से 1500 तक की आबादी वाले 50 प्रतिशत गांवों को सातवीं योजना तक पक्की सड़कों से जोड़ने का लक्ष्य रखा गया। पहाड़ी, आदिवासी, तटवर्ती और रेगिस्तानी क्षेत्रों में आबादी कम होने और बस्तियां दूर-दूर होने के कारण सातवीं योजना में इन क्षेत्रों के लिए ग्रामीण सड़कों हेतु न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के मानदण्डों को बदल दिया गया। पर्वतीय क्षेत्रों में 500 से अधिक आबादी वाले हर गांव को तथा 200 से 500 के बीच की आबादी वाले 50 प्रतिशत गांवों को 10 वर्ष में पूरी तरह पक्की सड़कों से जोड़ने का लक्ष्य रखा गया है, जबकि आदिवासी, तटवर्ती और रेगिस्तानी क्षेत्रों में 1000 से अधिक आबादी वाले सभी गांवों को और 500 से 1000 के बीच की आबादी वाले 50 प्रतिशत गांवों को पक्की सड़कों से जोड़ने का प्रावधान किया गया। सन् 1992 से लागू होने वाली आठवीं योजना के दृष्टिकोण पत्र में भी ग्रामीण परिवहन, ग्रामीण ऊर्जा और कृषि विकास को प्राथमिकता प्रदान की गयी है।

गांवों को पक्की सड़कों से जोड़ने के लिए विभिन्न वर्षों में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत व्यापक व्यय किया गया जिसका विवरण सम्बन्धित तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका

ग्रामीण सड़कों के लिए न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम में व्यय की स्थिति

(करोड़ रुपये)

वर्ष	निर्धारित राशि	व्यय
छठी योजना	1164.90	1245.32
1985-86	293.27	252.79
1986-87	241.94	310.65
1987-88	299.82	318.03
1988-89	317.66	335.67
1989-90	308.83	347.97
1990-91	410.45	---

स्रोत : वार्षिक रिपोर्ट, 1990-91, ग्रामीण विकास विभाग, कृषि मन्त्रालय, भारत सरकार।

आबादी के अनुसार छोटे-बड़े गांवों को पक्की सड़कों से जोड़ने का प्रयास न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत किया गया जिसके परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में गांवों को पक्की सड़कों से जोड़ना सम्भव हो सका। सम्बन्धित तालिका में इसका विवरण प्रस्तुत किया गया।

तालिका

पक्की सड़कों से गांवों को जोड़ने का विवरण

	1500 और इससे अधिक आबादी वाले गांव	1000-1500 आबादी वाले गांव
कुल गांव	67915	57859
छठी योजना (31-3-85) तक जुड़े गाँव	49203	30767
सातवीं योजना (31-3-90) तक जुड़े गांव	60863	39448
1990-91(लक्ष्य)	1084	1103

स्रोत : वार्षिक रिपोर्ट, 1990-91, ग्रामीण विकास विभाग, कृषि मन्त्रालय, भारत सरकार।

ग्रामीण सड़कों की कमियां

हमारे गांव सड़कों की कमी के कारण भली-भांति विकसित नहीं हो सके और गांवों के विकास की गति धीमी रहने के कारण ग्रामीण सड़कों का भी तेजी से विकास नहीं हुआ। परम्परावादी समाज और परम्परागत परिवहन साधनों के कारण सड़कों के विकास की अधिक

परम्परागत परिवहन साधनों के कारण सड़कों के विकास की अधिक आवश्यकता का अनुभव न करने के कारण भी गांव इस क्षेत्र में पिछड़े रहे। ग्रामीण सड़कें अनेक दोषों से ग्रसित बनी हुई हैं —

1. गांवों को मण्डियों से मिलाने वाली सड़कें बहुत कम हैं तथा खराब हालत में हैं।

2. खराब सड़कों के कारण यातायात व्यय अधिक होता है। यातायात साधन जल्दी-जल्दी खराब हो जाते हैं।

3. शीघ्र नष्ट होने वाले ग्रामीण उत्पाद जैसे दूध, सब्जी इत्यादि खराब सड़कों में समय अधिक लगने के कारण काफी मात्रा में नष्ट हो जाते हैं।

4. गांवों में बैलगाड़ी यातायात का प्रमुख साधन है। इनके प्रयोग से कच्ची सड़कों में गड्ढे पड जाते हैं। पक्की सड़कों को भी क्षति पहुंचती है। इसीलिए ग्रामीण सड़कें बहुधा टूटी-फूटी हालात में रहती हैं।

5. बरसात के दिनों में ग्रामीण सड़कों की हालात दयनीय हो जाती है। अनेक बार यातायात अवरूद्ध हो जाता है।

6. जिन क्षेत्रों में बाढ़ आती है उन क्षेत्रों में ग्रामीण सड़कों पर बाढ़ के बाद दलदल की स्थिति पैदा हो जाती है।

7. ग्रामीण सड़कों पर पुल-पुलियों का नितान्त अभाव रहता है। इसलिए ग्रामीणों को या तो नावों का प्रयोग करना पड़ता है या बहुत लम्बा चक्कर लगाना पड़ता है।

8. ग्रामीण सड़कें खस्ता हालत में रहने के कारण यान्त्रिक परिवहन साधनों के लिए अनुपयुक्त हैं।

ग्रामीण सड़कों में सुधार के सुझाव

अच्छी सड़कें ग्रामीणवासियों के लिए अनिवार्य हैं, अतः ग्रामीण सड़कों का सुधार करना अनिवार्य है। इसके लिए निम्नलिखित सुझावों को अमल में लाया जा सकता है:-

(i) ग्रामीण यातायात की प्रमुख साधन बैलगाड़ी में तकनीकी दृष्टि से सुधार करना जिससे ग्रामीण सड़कों को क्षति न पहुँचे।

(ii) गांवों को मुख्य सड़कों से जोड़ने वाली सहायक सड़कों का तेजी से विकास किया जाये।

(iii) बैलगाड़ी के साथ-साथ अब मोटर परिवहन साधन भी गांवों में तेजी से पहुंच रहे हैं। अतः सड़कों की मरम्मत की व्यवस्था नियमित होनी चाहिए।

(iv) गांवों में यों तो कच्ची सड़कों को ही प्राथमिकता दी जानी चाहिए किन्तु सुविधानुसार पक्की सड़कों का भी विकास करना चाहिए।

(v) ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों का विकास करने के लिए ऐच्छिक श्रम अर्थात् श्रमदान को प्रोत्साहित करना चाहिए। राष्ट्रीय सेवा योजना आदि के द्वारा भी ग्रामीण सड़कों का निर्माण सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

(vi) ग्रामीण सड़कों को इस प्रकार विकसित करना चाहिए कि एक निश्चित जनसंख्या और आकार के गांव विपणन केन्द्रों से जुड़ जायें।

(vii) राज्य सरकार को ग्रामीण सड़कों के निर्माण में स्वैच्छिक संस्थाओं का सहयोग लेना चाहिए। सड़कों के निश्चित भाग के रख-रखाव की जिम्मेदारी बांटी जा सकती है। ग्राम पंचायतों और सहकारी संस्थाओं का इसमें व्यापक सहयोग लिया जा सकता है।

ग्रामीण सड़कें जहां ग्रामीणों को दूध, खाद्यान्न, व्यापारिक फसलों, कुटीर उद्योगों के उत्पादों का सही मूल्य दिलाने में सहायक होती हैं, वहीं शहरों के लोगों को इन आवश्यक वस्तुओं की समय पर आपूर्ति हो जाती है। जिन क्षेत्रों में ये वस्तुएं उत्पादित नहीं होतीं, सड़कों की सहायता से उन क्षेत्रों में भी ये वस्तुएं पहुंच जाती हैं। ग्रामीण सड़कें श्रम को गतिशील बनाकर कृषि पर बढ़ रहे बेरोजगारी के बोझ को भी कम करती हैं। ग्रामीण अच्छी सड़कों को उपलब्धता होने पर पास के कस्बों व नगरों में आकर काम की तलाश कर लेते हैं।

ग्रामीण सड़कें ग्रामीण समाज को गतिशील, जागरूक, क्षमतावान बनाती हैं। सड़क परिवहन द्वारा घर-घर, गली-गली, हाट-बाजार से जुड़ जाती है। गांव ग्रामीण सड़कों के माध्यम से राष्ट्र की प्रगति में अमूल्य योगदान करते हैं।

वास्तव में देखा जाये तो केवल सड़क परिवहन ऐसा साधन है जिसे हम जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक कह सकते हैं। बिना सड़क के किसी भी प्रकार का यातायात असम्भव है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने ठीक ही कहा है : "पाये बिना पथ पहुंच सकता कौन इष्ट स्थान पर।" महात्मा गांधी के अनुसार गांवों के देश भारत में ग्रामीण सड़कों की सुविधा का विस्तार देश के आर्थिक व सामाजिक विकास के रास्ते खोल देगा। इस दिशा में सरकार के साथ-साथ जन-जन को सहयोग करने की जरूरत है।

एस०एस०वी०(पो०ग्रे०) कॉलिज,
'हिमदीप' राधापुरी,
हापुड़-245101 (उ०प्र०)

डूंगरपुर जिले में परती भूमि विकास योजना

□ अशोक कुमार यादव □

अरावली में बसे राजस्थान के आदिवासी जनसंख्या बाहुल्य डूंगरपुर जिले का नाम सार्थक करने वाली सभी पहाड़ियां अब नंगी नजर आती हैं। आदिवासियों की झोपड़ियां और टापरें भी इन डूंगरों व मगरों पर स्पष्ट नजर आने लगे हैं। घने सागवान वाले सागवाड़ा क्षेत्र में अब सागवान के जंगल समाप्त हो गये हैं। सैमल वृक्षों का क्षेत्र सीमलवाड़ा तो अपनी पहचान ही खो बैठा है।

सन् 1943-44 तक 3,97,200 हेक्टेयर क्षेत्रफल वाले डूंगरपूर जिले में 3,32,348 हेक्टेयर भू-भाग तरह-तरह की वनस्पतियों से आच्छादित था। वन्यजीवों की इस घने जंगल में भरमार थी।

आजादी के पहले सागवान, बांस, महुआ, खैर, आंवला, धावड़ा और आम के घने जंगलों के लिए प्रसिद्ध इस जिले में वनों का तेजी के साथ ऐसा विनाश हुआ कि वनौषधियों का खजाना कहा जाने वाला वृक्षों से समृद्ध ये प्रदेश वनस्पति विहीन होकर उन बेरहम लोगों के नाम पर आंसू बहा रहा है जिन्होंने कि इसे पहाड़ों से युक्त चट्टानी रेगिस्तान बनने के लिए मजबूर कर दिया। अभी कहने को डूंगरपुर जिले में 61 हजार 815 हेक्टेयर क्षेत्रफल में वन हैं परन्तु पहाड़ियां अपने गहने उतार कर वनस्पति विहीन नंगी नजर आती हैं। जंगल क्या खत्म हुआ, जिले में बसने वाली आदिवासियों की 65 प्रतिशत आबादी जिसकी अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार ये जंगल और इनसे प्राप्त होने वाली वन उपज थी, बेरोजगार हो गये हैं। आये साल अकाल पड़ जाता है तो ये आदिवासी रोजगार की टोह में साल में आठ माह पड़ोसी राज्य गुजरात में भटकते फिरते हैं। आखिर छोटी जोत वाली इन आदिवासियों की पहाड़ी खेती सालभर के लिए दो जून भर खाने को भी तो पैदा नहीं कर पाती।

यद्यपि वन विभाग ने आजादी के बाद डूंगरपुर जिले में पेड़ तो बहुत लगवाये पर पिछले वर्षों में यहां नयी वृक्ष संस्कृति ने जन्म लिया है। जल्दी पनपने वाली वनस्पति के पेड़, बहुत तादाद में लगवाये गये हैं जिससे यहां की मूल वनस्पति सागवान, आंवला, बांस, महुआ, आम, खैर की संस्कृति को भुला दिया गया है। नई वृक्ष संस्कृति ने यहां के आदिवासियों को भी आकर्षित किया है। कई स्थानों पर अब सागवान और बांस की जगह यूकेलिप्टस के बड़े-बड़े पेड़ नजर आते हैं। जंगल नहीं रहे तो यहां के आदिवासी वनौषधियों का प्रयोग करना भी भूलते जा रहे हैं।

डूंगरपुर जिले में वन संपदा के ह्रास से उत्पन्न हुई भयावह परिस्थितियों को केन्द्र व राज्य सरकार ने समझा है। डूंगरपुर जिले में हरियाली का फिर से प्रादुर्भाव करने और जिले के आदिवासियों को वर्ष भर के लिए रोजगार उपलब्ध कराने के उद्देश्य से परती भूमि विकास परियोजनायें आरंभ की गयी हैं। डुंगरपुर जिला परती भूमि विकास हेतु देश के चयनित पांच जिलों में से एक है। देश में यही एक मात्र जिला है जहां जिला प्रशासन द्वारा सीधे परती भूमि विकास योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है। गत तीन वर्षों से जिला प्रशासन द्वारा क्रियान्वित की जा रही परती भूमि विकास योजनाओं के अन्तर्गत सर्वप्रथम वर्ष 1989 व 1990 में सिल्वी पाश्चरल विकास योजना का क्रियान्वयन किया गया है। राष्ट्रीय परती भूमि विकास बोर्ड, नई दिल्ली द्वारा स्वीकृत 75 लाख रुपये की इस योजना के तहत कृषकों की 6 हजार हेक्टेयर निजी परती भूमि पर वृक्षारोपण एवं चरागाह विकास के कार्य कराये गये हैं।

बाद में जिला प्रशासन द्वारा परती भूमि विकास बोर्ड के दिशा-निर्देशों के अनुसार एकीकृत परती भूमि विकास परियोजना, देवल जलग्रहण क्षेत्र एवं मनपुर जल ग्रहण क्षेत्र प्रस्तुत की गयीं। इनको भी स्वीकृति मिली है। इनमें से देवल जल ग्रहण क्षेत्र परती भूमि विकास की पांच वर्षीय परियोजना 16 मई, 1990 से प्रारंभ हो गयी है। एक करोड़ सैंतीस लाख रुपये की लागत वाली इस परियोजना में दो हजार हेक्टेयर परती भूमि का विकास करने का लक्ष्य रखा है। इसमें से 64 लाख रुपये व्यय कर 902 हेक्टेयर भूमि पर भू-संरक्षण तथा वृक्षारोपण कार्य कराये जा चुके हैं। इस परियोजना का मुख्य उद्देश्य देवल जलग्रहण क्षेत्र की परती भूमि को उपजाऊ बनाना तथा उसे वानिकी कार्यों के लिए विकसित करना है। इसके लिए जन भागीदारी को विशेष महत्व दिया गया है। परियोजना के आरंभ से ही इसमें स्थानीय लोगों का पूरा सहयोग प्राप्त किया जा रहा है। परियोजना की समाप्ति पर इस विकसित भूमि को स्थानीय लोगों के सुपुर्द करने का भी प्रावधान रखा गया है।

इसी तरह डूंगरपूर-मनपुर नाम से एक अन्य एकीकृत परती भूमि

विकास परियोजना पर वर्ष 1990-91 से कार्य कराया जा रहा है। एक करोड़ 90 लाख रुपये की लागत वाली इस परियोजना में 2 हजार हेक्टेयर क्षेत्रफल में भू संरक्षण व वृक्षारोपण कार्य कराये जा रहे हैं।

इसके अलावा हरियाली के प्रादुर्भाव हेतु वर्ष 1990-91 के दौरान डूंगरपुर जिले में 2,510 हेक्टेयर भूमि पर हवाई बीज छिड़काव भी कराया गया है। इस परती भूमि पर विभिन्न प्रजातियों के कोई 38 टन बीज हवाई जहाज से छिड़कवाये गये हैं। हवाई बीज छिड़काव का मूल्यांकन किया गया तो प्रति हेक्टेयर 4,412 पौधे जीवित पाये गये। इस प्रकार के वृक्षारोपण में प्रति पौधा 5 पैसे की लागत आयी है।

आदिवासियों में वन विकास के लिए रूझान पैदा करने हेतु परती भूमि विकास योजना के तहत डूंगरपुर जिले में विकेन्द्रित पौधशाला योजना भी चलायी जा रही है। वर्ष 1989-90 से लेकर वर्ष 1991-92 तक डूंगरपुर जिले में 559 कृषक पौध शालाओं में एक करोड़ तीन लाख तीस हजार पौधे तैयार कराये गये। इस कार्य पर जिला ग्रामीण विकास अभिकरण ने 45 लाख 59 हजार रुपये व्यय किये। कृषकों द्वारा तैयार की गयी इन पौधशालाओं से ही वृक्ष खरीदकर उनको लगवाने के लिए कृषकों, विभागों, स्वयंसेवी संस्थाओं तथा आम जनता को मुफ्त में वितरित कराया गया। इसके दोहरे फायदे हुए, कृषकों का रूझान वृक्षारोपण के लिए उत्पन्न हुआ तो उन्हें मजदूरी भी मिली। जिला प्रशासन द्वारा क्रियान्वित करायी गयी इन परती भूमि विकास परियोजनाओं के परिणाम अब परिलक्षित होने लगे हैं।

इन परती भूमि विकास परियोजनाओं की सफलताओं को देखते हुए विभिन्न स्तरों पर विचार-विमर्श के बाद अब डूंगरपुर जिले में परती भूमि विकास परियोजना को वृहत्त रूप दिया गया है। जिले की भौगोलिक परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए तैयार की गयी संशोधित "डूंगरपुर एकीकृत परती भूमि विकास परियोजना" के लिए स्वीडिश अन्तर्राष्ट्रीय विकास एजेंसी (सीडा) का भी सहयोग प्राप्त किया गया है।

स्वीडिश अन्तर्राष्ट्रीय विकास एजेंसी (सीडा) के सहयोग से यह संशोधित डूंगरपुर एकीकृत परती भूमि विकास परियोजना नवम्बर 91 से जिले में शुरू हो गयी है। 28 करोड़ 22 लाख रुपये की लागत वाली इस संशोधित परियोजना में भू-संरक्षण एवं वनीकरण के कार्यों के साथ ही पशु पालन, कृषि वानिकी, मत्स्य पालन, चारा विकास, अनुसंधान, प्रशिक्षण आदि कार्यकलाप भी सम्पादित कराये जायेंगे।

इस महत्वाकांक्षी परियोजना का प्रथम चरण साढ़े पांच वर्षों का है अर्थात् यह चरण 31 मार्च, 1997 तक चलेगा। इस प्रथम चरण के परिणामों के मूल्यांकन के उपरान्त यह तय किया जायेगा कि परियोजना द्वितीय चरण में चलायी जाये। द्वितीय चरण भी पांच वर्षों का होगा। यह अनुमान किया गया है कि जिले में समस्त परती भूमि को 15 वर्षों में विकसित किया जा सकता है। अतः परियोजना का मूल्यांकन करने के पश्चात् इसे अगले 15 वर्षों तक चलाया जायेगा।

सीडा के सहयोग से क्रियान्वित की जा रही इस परियोजना के क्रियान्वयन हेतु एकदम नयी नीति का निर्माण किया गया है। यह योजना केवल सरकारी प्रयासों से ही संचालित नहीं होगी वरन् सरकारी कर्मचारी व स्वयंसेवी संस्थान कंधे से कंधा मिलाकर योजना की सफलता सुनिश्चित करेंगे।

इस तरह से वह दिन दूर नहीं कि जब डूंगरपुर जिले की नंगी पहाड़ियां फिर से हरियाली का आवरण ओढ़ेंगी। इस जिले के आदिवासियों को भरपूर रोजगार मिलेगा और वे साल में आठ माह गुजरात की ओर मुंह नहीं करेंगे।

डूंगरों और मगरों में छितराई आबादी में टापरों-टापरों में बसे डूंगरपुर जिले के कृषकों की आर्थिक स्थिति में बदलाव लाने के लिए डूंगरपुर का जिला प्रशासन एक और नायाब योजना लागू कराने जा रहा है। पहाड़ों पर खेती करने से कृषि उत्पादन नहीं के बराबर हो पाता है, यही वजह है कि जिला प्रशासन जिले के किसानों को त्रिस्तरीय कृषि का फार्मूला दे रहा है। त्रिस्तरीय कृषि के अन्तर्गत डूंगरपुर जिले के आदिवासी अपनी पहाड़ी जमीन पर चारा, पेड़-पौधे, कृषि की अच्छी पैदावार ले सकते हैं। पहाड़ी जमीन की चोटी पर आदिवासियों को चारा उगाने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है ताकि वह उनके पशुओं के काम आ सके। फिर पहाड़ी के बीच वाले भाग पर इमारती लकड़ी, छायादार, फलदार पौधों की खेती करने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। इसके बाद पहाड़ी के निचले हिस्से में कृषि पैदावार लेने की सलाह दी जा रही है। इस तरह से डूंगरपुर जिले के डूंगरों को हरा-भरा बनाने के लिए यह महत्वपूर्ण पहल है जो आदिवासियों की माली हालत में भी सुधार लायेगी।

जिला सूचना एवं जनसंपर्क अधिकारी
डूंगरपुर (राज०)—314001

ग्रामीण सड़कें

आर्थिक विकास के लिए ज़रूरी

□ डा० जगबीर कौशिक □

सड़क समाज की आकांक्षाओं को ऊँचा उठाने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । यह मालूम हुआ है कि विकास प्रक्रिया को आगे बढ़ाने में सड़कों का योग सबसे अधिक रहा है । परिवहन की सुव्यवस्थित और समन्वित व्यवस्था देश के आर्थिक विकास में अत्यन्त सहायक है । बड़े आकार और प्राकृतिक संसाधनों के दूर-दूर बिखरे होने के कारण हमारे देश में परिवहन की व्यवस्था और भी अधिक आवश्यक है । देश की अर्थव्यवस्था अब भी कृषि प्रधान और ग्रामोन्मुखी है । इसलिए परिवहन सम्बन्धी बुनियादी सुविधाओं में सड़कों का महत्वपूर्ण स्थान है । सड़कों के निर्माण और रख-रखाव से बहुत से लोगों को रोजगार भी मिलता है । सड़कें अच्छी हों तो वाहनों में ईंधन की खपत कम होती है और परिवहन क्षेत्र की उत्पादकता में सुधार होता है । इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए सातवीं योजना में सड़कों के विकास को प्रमुख स्थान दिया गया है ।

सड़कों का निर्माण और पंचवर्षीय योजनायें

सातवीं योजना में पहले की तरह सड़कों के विकास में मुख्य ध्यान गांवों में सड़कें बनाने पर दिया गया । सन् 1990 तक न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम में यह लक्ष्य था कि 1500 से अधिक आबादी वाले सभी गांवों में और 1000 से 1500 की आबादी वाले 50 प्रतिशत गांवों में सातवीं योजना के अन्त तक सड़कें बनें । पहाड़ी, जनजातीय और रेगिस्तानी इलाकों के मामलों में जहां जनसंख्या कम होती है वहां निर्माण के नियम में काफी ढिलाई दी गई थी । इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सातवीं योजना में 24000 गांवों में सड़कें ले जाई गईं ।

नियोजित विकास के प्रारम्भ के समय से सड़कों का जाल 4 लाख किलोमीटर से बढ़कर 17.7 लाख किलोमीटर हो गया है । राष्ट्रीय राजमार्गों की कुल लम्बाई 31,710 किलोमीटर है और कुल सड़क यातायात का एक तिहाई यातायात इन्हीं सड़कों पर होता है। अब तक 64 प्रतिशत गांव सड़कों से जुड़ गए है, हालांकि ये सारी सड़कें पकी नहीं हैं । छठी योजना में 2687 किलोमीटर लम्बी सड़कों को राष्ट्रीय राजमार्गों में बदला गया तथा 5.77 लाख किलोमीटर लम्बी नईं सड़कें बनाई गईं । न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत 18000 गांवों को सड़कों से जोड़ा गया, हालांकि लक्ष्य 20000 गांवों का था । आठवीं योजना में भी सड़क निर्माण द्वारा ग्रामीण विकास पर बल दिया गया है ।

यह ठीक है कि देश में सड़कों का विकास कुल मिलाकर सन्तोषजनक रहा है, किन्तु अभी इस दिशा में काफी कुछ करने की आवश्यकता है । देश के 36 प्रतिशत गांवों को दूसरे गांवों या शहरों से जोड़ने वाली अभी किसी तरह की कोई सड़क नहीं है और 65 प्रतिशत गांव ऐसे है जहां पकी सड़कें नहीं बनी है । केवल 47 प्रतिशत सड़कें अच्छी और सपाट हैं । राष्ट्रीय राजमार्गों में भी 30 प्रतिशत हिस्सा एक तरफा सड़कों का है । परिवहन के मुकाबले सड़कें काफी कम हैं, जिसके दुष्परिणाम आने-जाने में देरी, भीड़भाड़, ईंधन की बरबादी और वाहनों के रख-रखाव पर अधिक लागत के रूप में सामने आते हैं । अनुमान है कि सड़कों के कारण केवल ईंधन की बरबादी से प्रतिवर्ष 5 अरब रुपये का नुकसान होता है । टायरों के घिसने और वाहनों के दूसरे हिस्से-पुर्जों के नुकसान का हिसाब लगाया जाए तो कई गुना ज्यादा हानि होती है।

भारतीय सड़क कांग्रेस परिषद की भूमिका

राजमार्गों के इन्जीनियरों की संस्था भारतीय सड़क कांग्रेस परिषद् ने सड़क विकास योजना तैयार की है जिसमें सन् 2001 तक देश के सभी गांवों तक सड़क पहुंचाने का लक्ष्य तय किया गया है । इससे देश में कुल 27 लाख किलोमीटर लम्बी सड़कें हो जायेगी। इस योजना पर लगभग 64,250 करोड़ रुपये खर्च होंगे । योजना में राष्ट्रीय राजमार्गों, राज्यों के राजमार्गों तथा ग्रामीण सड़कों सहित सभी सड़कों के सन्तुलित विकास के साथ-साथ बेहतर सड़कों से ईंधन की बचत, सड़क सुरक्षा, पर्यावरण संरक्षण, निर्माण प्रौद्योगिकी के आधुनिकीकरण तथा अनुसंधान गतिविधियों जैसे महत्वपूर्ण पहलुओं पर जोर दिया गया है । केन्द्रीय परिवहन मंत्रालय ने इस योजना की एक-एक प्रति सभी राज्य सरकारों को भेजी है और उन्हें सुझाव दिया है कि वे इसी योजना के आधार पर अपनी-अपनी योजनायें तैयार करें ।

भारतीय सड़क कांग्रेस ने देश के विभिन्न भागों में चुने हुए जिलों में सर्वेक्षण किया जिससे पता चला है कि ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों के निर्माण से उन इलाकों में रहने वाले लोगों का आर्थिक और सामाजिक विकास भी होता है। भारतीय सड़क कांग्रेस की ग्रामीण सड़क समिति की देखरेख में जिन जिलों में यह सर्वेक्षण हुआ है वे इस प्रकार है: बांसवाड़ा (राजस्थान), बस्ती (उत्तर प्रदेश), भिवानी (हरियाणा), करबी-एगलोग (असम), खेड़ा (गुजरात), कोलार (कर्नाटक), पटियाला (पंजाब), रत्नगिरि (महाराष्ट्र) और सैलम (तमिलनाडु)। भारतीय सड़क कांग्रेस ने सड़कों के निर्माण के सामाजिक आर्थिक प्रभावों का मूल्यांकन करने के मापदंड भी तैयार किए हैं। जिसके आधार पर सम्बन्धित जिलों में सड़कों का जाल बिछाने की योजना और बनाने की विधियां भी तय की गई है। इससे भविष्य में अन्य जिलों में भी ग्रामीण सड़क योजना के वैज्ञानिक ढंग से तैयार करने और अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से सड़क निर्माण को प्राथमिकता देने में काफी मदद मिलेगी। इन अध्ययनों का उद्देश्य इन जिलों में सड़कों के विकास के साथ-साथ सामाजिक-आर्थिक उत्थान का विस्तृत अध्ययन करना और यह पता लगाना था कि सामाजिक-आर्थिक विकास के वे कौन से पहलू हैं जो सड़क विकास के साथ जुड़े हैं। इसका एक उद्देश्य भविष्य में सड़कों की विकास योजना बनाने के लिए कसौटी तय करना और अधिक से अधिक लाभ लेने व प्राथमिकतायें निर्धारण करने का निष्पक्ष तरीका ढूंढना था।

संगठनात्मक ढांचे का समन्वय

देश के प्रत्येक गांव को सड़क से जोड़ना बहुत बड़ा और कठिन कार्य है। इसमें सरकारी, गैरसरकारी तथा स्वयंसेवी संगठनों के सहयोग की जरूरत है। इस समय सड़कों का निर्माण ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा कमान क्षेत्र विकास कार्यक्रम जैसे अनेक कार्यक्रमों के अन्तर्गत भी हो रहा है। किन्तु सड़क निर्माण और रख-रखाव का काम कई संगठनों के हाथ में होने के कारण इनमें तालमेल में कमी रहती है, सड़कों का सन्तुलित विकास नहीं होता तथा एक ही काम कई बार हो जाता है। सड़क निर्माण रख-रखाव और नियोजन के काम में तालमेल की आवश्यकता है ताकि निर्धारित राशि खर्च करके अधिक से अधिक लाभ प्राप्त किए जा सकें। सरकार ने हाल ही में समिति गठित की है जो विभिन्न सड़क निर्माण कार्यक्रमों को समन्वित करने के पहलुओं की जाँच करेगी इस समिति की सिफारिशों के आधार पर इस दिशा में उपयुक्त उपाय किए जा सकेंगे। इसके अलावा प्रत्येक जिले में ग्रामीण सड़कों के निर्माण की विशेष योजनायें भी बनाई जानी चाहिए।

विशेषज्ञों ने सुझाव दिया है कि पहाड़ों जैसे दुर्गम क्षेत्रों में सड़कों की योजनायें तैयार करते समय लागत की कमी और पर्यावरण संरक्षण जैसी बातों का ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में पहाड़ी क्षेत्रों में अधपक्की सड़कें बनाने और जहां सड़कें अथवा अधपक्की सड़कों पर लागत अधिक आ रही हो, वहां रज्जुमार्ग बनाने की सम्भावनाओं पर विचार किया जाना चाहिए। रेगिस्तानी इलाकों में सड़कें बनाने में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे उन क्षेत्रों से गुजरें जहां पानी उपलब्ध हो। इस बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि दुग्ध उत्पादन केन्द्रों से दूध डेयरियों तक सड़कें बनाई जाएं।

परन्तु न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत सड़क निर्माण के काम की इस समय कोई निगरानी नहीं की जाती। समय और पैसे की बरबादी रोकने तथा खर्च का अधिक से अधिक लाभ उठाने के लिए राज्य सरकारों को सड़क निर्माण की निगरानी की उपयुक्त व्यवस्था करनी चाहिए। सड़क निर्माण के मद में धन की कमी को देखते हुए राज्य सरकारों को धन जमा करने की उसी तरह विशेष योजनायें चलानी चाहिए, जिस तरह हरियाणा और पंजाब में विपणन समिति योजना और राजस्थान में कृषि उपज मंडी योजना चलाई गई है। इन से एकत्र धन गाँवों में सड़कें बनाने पर किया जाए।

विश्व बैंक की सहायता

ग्रामीण सड़कों के निर्माण को विश्व बैंक भी सहायता देने को तैयार है। बैंक ने गुजरात की ग्रामीण सड़क परियोजना स्वीकृत कर ली है और उसके लिए ब्याज मुक्त एक अरब 55 करोड़ रुपये ऋण देने को सहमत हो गया है। यह ऋण 50 वर्षों के लिए होगा। यह योजना राज्य के 7 पिछड़े जिलों में चलाई जायेगी। इसके अन्तर्गत 1000 किलोमीटर लम्बी नई सड़कें बनाई जायेंगी और 3000 किलोमीटर तक वर्तमान कच्ची सड़कों को पक्का किया जायेगा।

सड़क निर्माण के लाभ

(1) गांवों को सड़कों के द्वारा शहरी क्षेत्रों से जोड़ने से ग्रामीण क्षेत्र की पैदावार शहरों में पहुंचाई जा सकेगी जिससे शहरी क्षेत्र को अनाज, फल-सब्जियां और दुध सुगमता से उपलब्ध होगा और ग्रामवासियों की स्थिति सुदृढ़ होगी।

(2) शहरों की ओर पलायन कम होगा।

(3) स्वास्थ्य सेवायें अधिकतर शहरों और कस्बों में उपलब्ध हैं।

शेष पृष्ठ 29 पर

आर्थिक चुनौतियां और नयी व्यापार नीति

□ राधानाथ चतुर्वेदी □

आज के विश्व में कोई भी देश चाहे कितना ही बड़ा, विकसित और प्राकृतिक संपदा से संपन्न क्यों न हो, किसी न किसी रूप में उसे अन्य देशों में बनी वस्तुओं पर निर्भर करना ही पड़ता है और इसी तरह अन्य देशों को अनेक वस्तुओं के लिए उस देश का मुंह देखना पड़ता है। आयात-निर्यात व्यापार का यही तर्क सम्मत आधार है। कठिनाई वहां उत्पन्न होती है जहां आयात-निर्यात का समुचित संतुलन नहीं होता। यदि आयात अधिक होने लगता तो भुगतान, जो बहुधा विदेशी मुद्रा में करना पड़ता है— उसकी स्थिति विषम हो जाती है— जैसी कि सन् 1991 के पूर्वाध में भारत में हो गयी थी। उस समय भारत के पास केवल 2600 करोड़ रुपयों की विदेशी मुद्रा शेष रह गयी थी—जो मुश्किल से दो सप्ताह की जरूरतों को पूरी कर सकती थी। आम तौर पर यह मुद्राकोष कम से कम तीन मास की आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम होना चाहिए। दूसरी ओर जापान जैसे देश हैं, जिनका निर्यात इतना अधिक होता है कि अमरीका जैसे देशों को भी अपना व्यापार घाटा पूरा करने के लिए उससे वार्ता करनी होती है।

जून, 91 का आर्थिक परिदृश्य

चुनावों के बाद जून, 91 में जब नयी सरकार ने कार्यभार संभाला तो उस समय आर्थिक परिदृश्य अत्यंत संकटमय था। वित्तमंत्री डाक्टर मनमोहन सिंह के शब्दों में "अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य बैंक हमें छोटी रकम भी उधार देने को तैयार नहीं थे। प्रवासी भारतीय देश से अपनी पूंजी बड़ी तेजी से निकाल रहे थे। लग रहा था कि हम विदेशों के ऋणों की किश्तें समय पर नहीं चुका पाएंगे (ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था)। आयात पर कठोर नियंत्रण से उद्योगों, कल-कारखानों में उत्पादन कम हो रहा था। मुद्रास्फीति तेजी से बढ़ रही थी। अगर हम विदेशी ऋण की एक भी किश्त समय पर दे सकने में असमर्थ सिद्ध हो जाते तो देश की अर्थव्यवस्था और वित्तीय ताने बाने को गहरा आघात लगता। बेरोजगारी विकराल रूप धारण कर लेती। उत्पादन बहुत घट जाता और मुद्रास्फीति बहुत अधिक हो जाती।"

नयी व्यापार नीति

विषम आर्थिक स्थिति से निपटने के लिए सत्ता संभालने के 45 दिन के भीतर केन्द्र ने अनेक उपायों की तुरंत घोषणा की। रुपये का अवमूल्यन किया गया, जिससे भारत की वस्तुओं के दाम अंतर्राष्ट्रीय मण्डियों में घटें और उनकी मांग बढ़ जाये। निर्यात पर दी जाने वाली सहायता समाप्त कर दी गयी। इसका उद्देश्य भारतीय माल की गुणवत्ता बढ़ाना था। उद्योगों और कल कारखानों को लायसेंस देने की नीतियों को उदार कर दिया गया। प्रवासी या भारतमूल के विदेशों में बसे लोगों के लिए ऐसी योजनाएं बनाई गयीं जिससे वे भारत से अपनी जमापूंजी निकाल कर बाहर न ले जायें बल्कि इसके विपरीत वे और पूंजी भारत में लाएं। इन सब से स्थिति संभालने में सहायता मिली।

यों तो जुलाई, 1991 में नयी सरकार के गठन के कुछ दिन बाद ही 'व्यापार नीति' में परिवर्तनों की घोषणा कर दी गयी। बाद में वाणिज्य राज्य मंत्री ने वित्त तथा अन्य मंत्रालयों से परामर्श के बाद 13 अगस्त को संसद में व्यापार नीति के संबंध में विस्तृत वक्तव्य दिया जिसमें निर्यात बढ़ाने के उपायों पर विशेष ध्यान दिया गया था। नीति में शत-प्रतिशत निर्यात हेतु उत्पादन करने वाले कारखानों के लिए अधिक सुविधाएं और रियायतें देने की व्यवस्था थी। नीति की अन्य उल्लेखनीय व्यवस्थाओं में यह भी व्यवस्था थी कि ऐसे कारखाने जो केवल निर्यात के लिए वस्तुओं को तैयार करते हैं उन्हें अधिकतम प्रोत्साहन मिले। स्टॉक रखने के लिए निजी पार्टियां निर्यात के लिए माल तैयार करने के क्षेत्र में गोदाम बना सकें उसकी भी सुविधा दी गयी। प्रक्रियाओं को विकेन्द्रित और सुधार के उपाय किये गये कि जिससे जल्दी फैसले हो सकें तथा अनावश्यक विलम्ब न हो।

विदेशी मुद्रा कोष में वृद्धि

नयी नीति के फलस्वरूप निर्यात में वृद्धि कितनी हुई, यह जानने के लिए कुछ समय और प्रतीक्षा करनी होगी, लेकिन प्रत्यक्ष परिणाम विदेशी मुद्रा कोष में वृद्धि के आंकड़ों से देखा जा सकता है। 15 दिसम्बर 1991 तक विदेशी मुद्राकोष में वित्त मंत्री के अनुसार, 8000 करोड़ रूपयों की विदेशी मुद्रा आ चुकी थी। डालरों में यह 3 अरब 10 करोड़ के बराबर होती है। कुछ अन्य रिपोर्टों के अनुसार अब तक यह राशि दस हजार करोड़ रुपयों तक पहुंच चुकी है जिसका अर्थ यह है कि कोई चार अरब डालर देश के विदेशी मुद्रा कोष में है। इसके अलावा सोना विदेशों में गिरवी रखा गया था उसे भी छुड़ा

लिया गया है। यह सच है कि विदेशी मुद्रा कोष को बढ़ाने में प्रवासी भारतीयों द्वारा और ज्यादा पूँजी निवेश किया जाना महत्वपूर्ण तत्व है, लेकिन बिना निर्यात वृद्धि के ऐसा होना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य था।

आवश्यकता इस बात की है कि निर्यात वृद्धि की जो अलक्षित प्रवृत्तियाँ विकसित हुई हैं उनको और अधिक विस्तृत और सशक्त बनाया जाये तथा उनकी गति को न केवल बनाए रखा जाये बल्कि और तीव्र किया जाये। यह दायित्व निर्यातकों का है। सरकार का दायित्व है कि वह नीतिगत उपाय को तथा नीति को उदार बनाकर निर्यात को प्रोत्साहन, गति एवं सही दिशा दे। यह तो अब स्पष्ट है कि यदि निर्यात वृद्धि का सिलसिला जारी नहीं रहा तो देश औद्योगिक उत्पादन वृद्धि के लिए आवश्यक सामग्री और उपकरणों को विदेशों से मंगाने में सफल नहीं हो सकेगा और अभी विदेशी मुद्रा कोष में जो वृद्धि हुई है, वह विदेशी ऋणों की अदायगी और उपकरणों तथा सामग्री के आयात पर होने वाले खर्च के कारण कपूर की तरह उड़ जायेगी।

विगत वर्षों की निर्यात स्थिति

अस्सी के दशक के उत्तरार्ध और 1990 के दशक के आरंभ में निर्यात की प्रवृत्तियों की तुलना दिलचस्प है। पिछले छह वर्षों में निर्यात के आंकड़े इस प्रकार रहे :-

(करोड़ रुपयों में)

वर्ष	निर्यात	प्रतिशत अन्तर
1986-87	12451.95	+14.5
1987-88	15673.66	+25.9
1988-89	20231.50	+29.1
1989-90	27681.47	+36.5
1990-91	32527.28	+17.5

इस विवरणी से पता चलता है कि जहां 1989-90 में सबसे अधिक निर्यात बढ़ा, वहीं 1990-91 में इसमें भारी ह्रास हुआ। यह प्रतिकूल प्रवृत्ति सीधे तौर पर हमारे विदेशी मुद्रा कोष भण्डार पर असर डालने में समर्थ हुई। लेकिन नयी सरकार ने वृद्धि को बढ़ाने का निर्णय किया है और निर्यात को इस वर्ष 37,360 करोड़ रुपये तक ले जाने का संकल्प किया है।

निर्यातकों का दायित्व

सरकार द्वारा किये गये इन साहसी और क्रांतिकारी परिवर्तनों के बाद निर्यातकों का दायित्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। उन्हें न केवल अधिक आर्डर प्राप्त करने हैं बल्कि देखना है कि उनका उत्पाद अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में मूल्य और गुणवत्ता में अपनी साख बढ़ा सके। इस मामले में जापान सब देशों से आगे बढ़कर बाजी मार ले गया है। उसका बनाया माल अच्छा और टिकाऊ होने के साथ सस्ता भी होता था। जापानवासी स्वयं अपनी खपत कम करके उसको निर्यात करने में गर्व अनुभव करते हैं। यही कारण है कि जापान के बाजारों में जापान में बना माल मंहगा है और वही माल हांगकांग और सिंगापुर की अंतर्राष्ट्रीय मण्डियों में विदेशी ग्राहकों को सस्ता मिलता है। यह भी शिकायतें हैं कि जो सामान नमूने के तौर पर विदेशी व्यापारियों को भेजा जाता है, वह तो बड़ी उच्चकोटि का होता है लेकिन बाद में उसकी गुणवत्ता नमूने के मुताबिक नहीं होती। इन सारी शिकायतों और कमजोरियों को निर्यातकों को दूर करना होगा, जिससे विदेशी मण्डियों और बाजारों में भारत के माल की मांग बढ़े।

सरकार ने अपना दायित्व पूरा कर दिया है। अब देश के व्यापारियों के हाथ में है कि उन्हें अपना व्यापार बढ़ाने और अपने लाभ के साथ देश की सेवा का जो अवसर मिला है, उसका संकीर्ण स्वार्थों से ऊपर उठकर पूरा लाभ उठाएं।

निर्यात का बड़ा व्यापक क्षेत्र है। पहले से जो सामान बाहर जाता रहा है, उनमें हीरे-जवाहरात, चमड़े का सामान और वस्त्र तो थे ही, अब रासायनिक पदार्थ, कृषि और तदजन्य पदार्थ, खनिज पदार्थ आदि भी शामिल हैं। चाय, कॉफी, मसाले, काजू, मांस तथा मांस जन्य पदार्थ जिनमें समुद्री खाद्य भी शामिल हैं, काफी अधिक मात्रा में निर्यात हो सकते हैं। चीनी का भी निर्यात शुरू हो गया है।

निर्यात व्यापार का असीम क्षितिज हमें नये शिखरों की ओर बढ़ने का निमंत्रण दे रहा है। अब यह हमें सिद्ध करना है कि हम इन नये शिखर को अपने निर्यात व्यापार में छूने की क्षमता रखते हैं।

साभार : पत्र सूचना कार्यालय

ग्रामीण विकास क्या है ?

□ डॉ० अब्दुल रशीद □

ग्रामीण विकास से आशय "ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले निम्न-आय वर्ग के लोगों के जीवन-स्तर में सुधार लाने और उनके विकास के क्रम को आत्म-पोषित बनाने से है।"

ग्रामीण विकास की अवधारणा का उदय कृषि विकास के संदर्भ में अस्तित्व में आया और एक लम्बे समय तक भारत के कृषि विकास को ही ग्रामीण विकास का पर्याय समझा गया। किन्तु 1970 के बाद ग्रामीण विकास की अवधारणा में मूलभूत परिवर्तन हुआ, और इसका क्षेत्र समवर्ती योजनाओं में अधिक विस्तृत कर दिया गया। विश्व बैंक के अनुसार ग्रामीण विकास एक ऐसी संगठित कार्य पद्धति को व्यक्त करता है जिसके द्वारा ग्रामीण क्षेत्र के व्यक्तियों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में सुधार का प्रयास किया जाता है। ग्रामीण विकास में राष्ट्रीय विकास के लाभों को ग्रामीण अंचलों में रहने वाले गरीब व्यक्तियों तक पहुँचाने की प्रक्रिया सम्मिलित होती है। विश्व बैंक द्वारा ग्रामीण विकास पर प्रकाशित एक पत्र के अनुसार :-

"ग्रामीण विकास के किसी राष्ट्रीय कार्यक्रम को अनेक कार्यों का मिश्रण होना चाहिये जिसमें कृषि उत्पादन बढ़ाने वाली, नई रोजगार योजनायें उत्पन्न करने वाली, स्वास्थ्य एवं शिक्षा में सुधार लाने वाली, संचार का विस्तार करने वाली तथा आवासीय स्थिति सुधारने वाली परियोजनाओं को सम्मिलित होना चाहिये।"

इस प्रकार ग्रामीण विकास ऐसे समन्वित कार्यक्रमों, क्रियाकलापों एवं नीतियों का समन्वित आधार है जिनके द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि एवं उससे सम्बन्धित क्षेत्रों के विकास, स्थानीय भौतिक एवं जनपूंजी के अनुकूलतम प्रयोग और ग्रामीण व्यक्तियों के रहन-सहन में सुधार के प्रयास किये जाते हैं।

इन्टरनेशनल लेबर रिव्यू, 1973 में प्रकाशित प्रो० डी०एल० डब्ल्यू. लेंकर के अनुसार, "ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिये रणनीतियां, नीतियां तथा कार्यक्रम और इन क्षेत्रों में चलाये जाने वाले कार्यों (कृषि, वानिकी, मत्स्य पालन, ग्रामीण शिल्प और उद्योग, सामाजिक एवं आर्थिक ढांचे का निर्माण) की उन्नति के लिए जिसका कि अंतिम उद्देश्य है— उपलब्ध भौतिक एवं मानवीय संसाधनों का पूर्ण उपयोग, ग्रामीण क्षेत्र के जनसामान्य विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों के गरीबों के लिये उन्नतर आय तथा बेहतर जीवन यापन सुविधायें और विकास प्रक्रिया में उनकी प्रभावी भागेदारी।"

उपर्युक्त परिभाषा का यदि विश्लेषण किया जाय तो ग्रामीण विकास से सम्बन्धित निम्नलिखित तथ्य प्रकाश में आते हैं -

(1) ग्रामीण व्यक्तियों के रहन-सहन के स्तर में सुधार जिसमें रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, मकान, स्वच्छ वातावरण एवं अन्य सामाजिक सुविधाएं सम्मिलित हैं।

(2) ग्रामीण क्षेत्रों का संतुलित विकास और बढ़ती हुई ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों की असमानताओं में कमी करना।

(3) उत्पत्ति के साधन (भौतिक एवं मानवीय) का पूर्ण उपयोग सुनिश्चित करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में उपयुक्त तकनीकी ज्ञान का प्रसार।

(4) ग्रामीण अर्थव्यवस्था में आर्थिक संसाधनों के संग्रहण और संगठन के लिये आवश्यक संस्थानिक ढांचे का निर्माण जिसमें बैंकिंग संस्थाओं का विकास सम्मिलित है।

(5) ग्रामीण व्यक्तियों में विकास की नीतियों को अपनाने की इच्छा विकसित करना। तथा

(6) समाज में न्यायिक वितरण संभव बनाना।

इस प्रकार ग्रामीण विकास ग्रामीण जनता की गरीबी पर सीधा आघात करने का एक ऐसा समन्वित कार्यक्रम है जिसमें क्षेत्रीय संसाधनों का अधिकतम संभव प्रयोग करते हुए ग्रामीण जनता की रहन-सहन की दशाओं में सुधार करना है। संक्षेप में, ग्रामीण विकास से आशय ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले निम्न आय वर्ग के लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाना और उसके विकास के क्रम को आत्म पोषित बनाने से है।

ग्रामीण विकास के आधार भूत तत्वों को निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है:—

ग्रामीण विकास

कृषि	ग्रामीण उद्योग	शिक्षा	सेवा-क्षेत्र
1. उत्पादकता में वृद्धि	1. तकनीकी प्रशिक्षण	1. तकनीकी शिक्षा का विकास	1. स्वास्थ्य
2. कृषि यन्त्रीकरण	2. विद्युतीकरण	2. काश्तकारी को बढ़ावा	2. परिवार कल्याण
3. उन्नत बीजों का प्रयोग	3. यातायात	3. तकनीकी प्रशिक्षण	3. शिक्षा
4. कीट नियंत्रण	4. आधुनिकीकरण	4. सामाजिक कुरीतियों का समापन	4. व्यापार
5. रासायनिक खादों का प्रयोग	5. स्थानीय संसाधनों का घरेलू उद्योगों में प्रयोग		5. कार्य-शाला
6. विपणन	6. विपणन		6. बैंकिंग संस्थायें

ग्रामीण विकास की विशेषतायें

ग्रामीण विकास की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं -

(i) ग्रामीण क्षेत्र में यद्यपि पर्याप्त संसाधन उपलब्ध हैं परन्तु उनका उचित विदोहन व एकत्रीकरण न होने के कारण वे बेकार पड़े रहते हैं। अत: ग्रामीण विकास के लिये उन संसाधनों का एकत्रीकरण किया जाता है।

(ii) ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में निर्बल वर्ग में उपयुक्त दक्षता और योग्यता का विकास किया जाता है और उन समस्त साधनों को जुटाने का प्रयास किया जाता है, जिनमें इस योग्यता व दक्षता का उपयोग हो सके।

(iii) ग्रामीण विकास में निम्न आय वाले क्षेत्रों और वर्गों को पर्याप्त साधन उपलब्ध कराने की व्यवस्था की जाती है और इस बात का उचित प्रबन्ध किया जाता है कि विभिन्न उत्पादकता और कल्याण सम्बन्धी सेवाएं इस वर्ग को उपलब्ध हो जाए।

इस प्रकार ग्रामीण विकास में उन समस्त कार्यक्रमों को सम्मिलित किया जाता है जो मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं से जुड़े होते हैं जैसे कृषि एवं सम्बन्धित क्रियाएं, सिंचाई, पूरक रोजगार, शिक्षा, प्रशिक्षण, दूर संचार, आवास एवं सामाजिक कल्याण आदि।

ग्रामीण विकास के उद्देश्य

ग्रामीण विकास क्षेत्रीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों के अनुकूलतम प्रयोग के उद्देश्य पर आधारित है। ग्रामीण विकास के उद्देश्यों में निम्नलिखित बिन्दुओं को सम्मिलित किया जा सकता है-

(1) ग्रामीण क्षेत्र के भौतिक और मानवीय संसाधनों का पूर्ण उपयोग।

(2) ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि पर आधारित उद्योगों का विकास करके रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना।

(3) ग्रामीण क्षेत्र में उत्पादन एवं उत्पादकता वृद्धि के लिये ग्रामीण अर्थव्यवस्था के अनुरूप तकनीकी ज्ञान का प्रयोग करना।

(4) क्षेत्र के विकास के लिये आरम्भ किये गये अनेक सामाजिक-आर्थिक कार्यक्रमों में स्थानीय व्यक्तियों को सम्मिलित करके क्षेत्रीय विकास के लिये प्रयास करना।

(5) ग्रामीण अर्थव्यवस्था और शहरी अर्थव्यवस्था के आर्थिक अन्तराल को कम करना।

(6) सभी ग्रामीण व्यक्तियों को एक समान आर्थिक कल्याण देने के लिये समान वितरण प्रणाली पर बल देना।

(7) ग्रामीण अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर बनाना।

ग्रामीण विकास के उपर्युक्त सभी उद्देश्यों का आपस में सह-सम्बन्ध है। स्पष्ट है कि ग्रामीण विकास का विचार कृषि विकास की तुलना में विस्तृत है और कृषि विकास ग्रामीण विकास का एक आंशिक क्षेत्र मात्र है।

अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग,
संत तुलसी दास महाविद्यालय,
कादीपुर, सुलतानपुर (उ.प्र.)

ग्रामीण सड़कें

यातायात की धमनियां

□ वेद प्रकाश अरोड़ा □

किसी भी क्षेत्र का विकास करना हो तो उसके लिए सबसे पहले सड़कें बनाई जाती हैं । गांव हो या शहर, यातायात तभी सुगमता से हो पाता है जब प्रत्येक दिशा में जाने के लिए सड़कें हों । सड़के यातायात की धमनियां कहलाती हैं । इतिहास के पन्ने पलटते ही इस की पुष्टि हो जाती है । सिंधु घाटी की सभ्यता इसलिए नगर सभ्यता कहलाती है कि वहां की खुदाई से प्राप्त अवशेष में हड़प्पा नगर, मोहन जोदड़ो नगर से बड़ा था तो भी निर्माण और नगर आयोजन की दृष्टि से दोनों में काफी समानताएं थी । दोनों नगरों की अधिकतर सड़कें चौड़ी, बड़ी और सीधी थीं जो एक दूसरे को समकोण पर काटती थी । सबसे चौड़ी सड़क तैंतीस फुट थी जो नगर के ठीक बीच से गुजरने के कारण संभवत: राजमार्ग था और इसका उपयोग रथों और गाड़ियों के लिए होता होगा । नगर की अन्य सड़कों की चौड़ाई नौ फुट से 12 फुट थी । शहर के अन्दर अनेक गलियां भी थीं जिनकी चौड़ाई 4 फुट से कम नहीं थी । मकानों के दरवाजे इन्हीं गलियों में खुलते थे । उधर रामायण और महाभारत में सड़कों का उल्लेख ही नहीं है, बल्कि उनमें यह भी बताया गया है कि सड़कों को बनाने की विधि क्या है । कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र में तो विभिन्न कार्यों के लिए विभिन्न वर्गों की सड़कें बनाने का प्रावधान है । इनके लिए अलग-अलग विशिष्टियों, मानकों और स्तरों का सविस्तार वर्णन भी किया गया है । विभिन्न क्षेत्रों में पुरातत्वों के लिए खुदाई में प्राप्त अवशेषों से साफ पता चलता है कि प्राचीन काल में शहरों और कस्बों में सड़कों के आश्चर्यजनक ढंग से योजनाबद्ध संजाल बने हुए थे । भारतवासियों ने गंगा के पार जिस भारत का यानी वृहद सांस्कृतिक भारत का निर्माण किया, वह सड़कों और जलमार्गों की सुचारू व्यवस्था के कारण संभव हुआ था ।

मध्यकाल

मध्यकाल में विभिन्न पवित्र स्थलों और पुनीत नगरों को जाने के लिए यात्री मार्ग बने हुए थे । रामेश्वरम और पुरी जाने वाले यात्री मार्गों का तो बाद में राष्ट्रीय राजमार्ग के रूप में विकास किया गया । सच तो यह है कि मध्यकाल में ग्रामीण सड़कों का ताना-बाना विश्व के किसी अन्य देश के मुकाबले कहीं अधिक विकसित था । शेरशाह सूरी ने प्राचीन हिंदू राजाओं की परम्परा के अनुसार अपने साम्राज्य में कई सड़कों और सरायों का निर्माण कराया, जिससे सभी क्षेत्रों का राजधानी से सीधा संबंध जुड़ सके । उसकी चार सड़कें अत्यंत प्रसिद्ध हुई । इनमें सबसे लम्बी सड़क थी— पूर्वी बंगाल में सोनार गांव से आगरा, दिल्ली और लाहौर होती हुई सिंधु नदी तक पन्द्रह सौ कोस लम्बी, सड़क-ए-आजम अर्थात ग्रांड ट्रंक सड़क । दूसरी सड़क आगरा से बुरहानपुर तक, तीसरी आगरा से जोधपुर एवं चित्तौड़ तक और चौथी लाहौर से मुलतान तक जाती थी । कानूनगो के शब्दों में ये मार्ग और रास्ते साम्राज्यरूपी ''शरीर की धमनियां'' थे ।

आधुनिक काल

जब रेलों का आविष्कार और विस्तार हुआ तो अनेक क्षेत्रों में यातायात का क्रमश: यही मुख्य साधन बन गई । कहीं इन्होंने परिवहन वाली सड़कों का स्थान ले लिया, कहीं इन्होंने सड़कों को गौण और पूरक बना दिया तो कहीं विशेष रूप से रेल-स्टेशनों से सम्पर्क के लिए नई और लम्बी सड़कें बनानी पड़ी । इतना ही नही साइकिलों और बाद में मोटर साइकिलों, मोटर गाड़ियों और ट्रकों के अधिकाधिक संख्या में बनते जाने, जनसंख्या तथा आधुनिकता की हवा तेज़ी से बढ़ते जाने के कारण न केवल शहरों में बल्कि गांवों में भी सड़कों के निर्माण पर अधिक जोर दिया जाने लगा । सड़कों के निर्माण में प्रयुक्त सामग्री और टैक्नालोजी भी उन्नत होते जाने से सड़कों के रूप-स्वरूप में सुधार होता चला गया । शहरों में नगरपालिकाओं और नगर निगमों तथा गांवों में पंचायतों और पंचायत समितियों को सड़कें बनाने और उनके रखरखाव का दायित्व सौंपने से न केवल सड़कों का विस्तार हुआ, बल्कि मजबूत तथा उन्नत होती चली गईं।

कानून

भारत सरकार के 1919 के अधिनियम के अंतर्गत सड़कें प्रांतों के अधिकार क्षेत्र में आती थीं और प्रांतीय सरकार सड़कों के काफी बड़े हिस्से की जिम्मेदारी स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं को सौंप देती थी । लेकिन ट्रंक सड़कों का कुछ हिस्सा वे अपने अधिकार क्षेत्र

में रखती थीं। परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक प्रांत और उसके अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों में सड़क बनाने की अलग-अलग नीतियां निर्धारित होती चली गई। सड़कों के रखरखाव के मानक भी अलग-अलग होते चले गए क्योंकि प्रत्येक स्थानीय संगठन की वित्तीय क्षमता और परिस्थितियां अलग-अलग रहती थीं। लेकिन दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान बख्तरबंद सेना के आनेजाने के लिए सुचारू रूप से विकसित सड़क संजालों की आवश्यकता महसूस की गई। तब देशभर के प्रांतों और बड़ी रियासतों के मुख्य इंजीनियरों का दिसंबर 1943 में एक सम्मेलन नागपुर में बुलाया गया और उसी में समूचे भारत के लिए सड़क विकास की एक समान योजना निर्धारित की गई तथा एक रिपोर्ट तैयार की गई। इसी रिपोर्ट को 'नागपुर रिपोर्ट' कहा जाता है। सम्मेलन की सिफारिशों के अनुसार सड़कों का पांच श्रेणियों में वर्गीकरण किया गया जो इस प्रकार है :-

1. ***राष्ट्रीय राजमार्ग***–ये बड़ी सड़कें हैं जो देश के एक छोर से दूसरे छोर तक जाती हैं तथा बड़ी बंदरगाहों, राज्यों की राजधानियों और विदेशी राजमार्गों को मिलाती हैं।

2. ***प्रांतीय राजमार्ग***–ये सड़कें तत्कालीन प्रांत और वर्त्तमान राज्य विशेष के अंदर यातायात की प्रमुख सड़कें होती हैं। ये सड़कें राष्ट्रीय राजमार्गों से, पड़ोसी राज्यों के राजमार्गों से, राज्य के अंदर जिला मुख्यालयों और बड़े शहरों से जुड़ी होती हैं। साथ ही ये सड़कें जिला-सड़कों तक आने जाने के मुख्य मार्ग होते हैं।

3. ***जिला सड़कें***-ये उत्पादन केन्द्रों और मंडियों को परस्पर जोड़ती हैं। साथ ही ये राजमार्गों और रेल केन्द्रों तक ले जाती हैं। यातायात को महत्व की दृष्टि से, जिला सड़कों को दो भागों में बांटा गया है प्रमुख जिला सड़कें और, अन्य ज़िला सड़कें।

4. ***ग्रामीण सड़कें***– जो गांवों और ग्रामीण समूहों को परस्पर जोड़ती हैं। साथ ही ये सड़कें सबसे निकट की बड़ी सड़क, प्रमुख राजमार्ग, रेलवे और घाट से मिलती हैं।

वर्गीकरण से स्पष्ट है कि सड़कों की अनिवार्यता और उसकी उत्तमता का एहसास शहरों, गांवों या कस्बों सभी को है। लेकिन गांवों की सड़कों का चेहरा, उनकी गुणवत्ता और टिकाऊपन बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि स्वयं गांव शहर से, जिला केंद्र या तहसील के सदरमुकाम से कितनी पास या दूर हैं। अगर गांव शहर के अंदर, उससे सटे या उसके हाशिए पर बसे हैं तो इन गांवों को जोड़ने वाली सड़कें पक्की मिल सकती हैं लेकिन गांवों के अंदर या फिर एक गांव को दूसरे गांव से मिलाने वाली सड़कें गरीब की हस्त रेखाओं की तरह या तो कटीफटी, छोटी या फिर नदारद मिलती हैं। पर शहर के पास बसें गांवों या कस्बों में पक्की सम्पर्क सड़कें होने के बावजूद उनके सामने एक नई समस्या मुंह बाए खड़ी रहती है। यह समस्या है अतिक्रमण की, जिसकी वे प्रायः शिकार रहती हैं। इसके लिए वहां के निवासी और स्थानीय स्वायत्त संगठन, दोनों जिम्मेदार होते हैं। जहां लोगों में नागरिक-कर्त्तव्यों और दायित्वों के बोध की कमी, या उन्हें निभाने में कोताही एक रोग का रूप ले लेती है, वहां नगर पालिकाओं या नगर निगमों के कर्मचारियों की अतिक्रमणकर्ताओं से सांठगांठ एक खुला रहस्य बन जाती है।

शहरों से दूर के गांवों में या तो सड़कें हैं ही नहीं और हैं तो वे निर्धन के उजड़े-उखड़े नसीब वाली रेखाओं की तरह कुछ दूरी तक जाकर अदृश्य हो जाती हैं। सड़कों के अभाव से जनजातीय, रेगिस्तानी, पर्वतीय, वनवासी और द्वीपसमूहों के ग्रामीण क्षेत्र बुरी तरह ग्रस्त रहते हैं। वहां पानी के जोहड़ या खड्डे के बाद आधुनिकता का अट्टहास करते हुए दिखाई देते हैं। जो कच्ची-पक्की, थोड़ी बहुत सड़कें यहां वहां बनी हुई होती हैं, उनके रखरखाव तथा सफाई और उन्हें चौड़ा या लम्बा करने की तरफ बहुत कम ध्यान दिया जाता है। वे लावारिस सी अपने उध्दार की प्रतीक्षा में स्वयं को ही मिटा डालती हैं।

सम्पर्क सड़कें

इस समय देश के 6 लाख गांवों में से 30 प्रतिशत से अधिक गांवों में कोई सड़क-सम्पर्क नहीं है। अन्यत्र जो ग्रामीण सड़कें बनी हुई हैं, उनमें से लगभग 70 प्रतिशत बारहमासी अथवा सब मौसमों में चलने लायक नहीं हैं। सड़कें बनने के कुछ समय बाद ही वे ऊंचीनीची या उथली-उखड़ी दिखाई देने लगती हैं, क्योंकि वे जिस सामान से बनाई जाती हैं, वह निम्नस्तर का और मिलावटी होता है। बिटूमन की परत की मोटाई भी इकसार नहीं डाली जाती। उबड़खाबड़ बने रहने के कारण बरसात में तो इन सड़कों पर इतना पानी जमा हो जाता है कि वे मौत के जोहड़ बन जाते हैं।

यह स्थिति तब है जब ग्रामीण सड़कें गांवों को मंडियों, बाजारों और बहुआयामी सेवाओं से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इतना ही नहीं ग्रामीण क्षेत्र शहरों के मुख्य सप्लाई केंन्द्र होते हैं। गांवों से ही शहरों को अनाज तिलहन व सब्जियाँ, कपास, जूट, दालें तथा अन्य खाद्य-पदार्थ मिलते हैं। इसलिए शहरों, कस्बों तथा रेल केन्द्रों के साथ गांवों को जोडने वाली सड़कें और स्वयं गावों के अंदर बढ़िया सड़कें होना अत्यंत आवश्यक है। सड़कें जितनी समतल

और सुदृढ़ होंगी, बाइसिकल, मोटर वाहन और बैलगाड़ियां उतनी तेजी से आ जा सकेंगी। इससे गांवों में कुटीर उद्योगों, नन्हें उद्यमों, हथकरघा उद्योगों और लघु उद्योगों का तेजी से चहुमुखी विकास होगा तथा दुग्धशालाओं का ताना-बाना फैल जायेगा। गांवों में सड़कों का संजाल जितना सुचारू और सुव्यवस्थित होगा, उतना ही ग्रामीण क्षेत्रों के चेहरे में निखार आता चला जायेगा तथा गांव हमारे शहरों की सतत् आपूर्ति के सुदृढ़ दुर्ग बन जायेंगे। हालांकि बीस सूत्री कार्यक्रम में गांवों की सड़कों के लिए कोई कार्यक्रम नहीं है तो भी राज्यों के न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम का यह एक अविभाज्य अंग है। इस मद की व्यय राशि राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों की योजनाओं में शामिल होती है।

योजनाएं

छठी योजना में डेढ़ हजार और उससे अधिक जनसंख्या वाले सभी-गांवों को तथा सातवीं योजना में एक हजार से डेढ़ हजार तक की आबादी वाले 50 प्रतिशत गांवों को मंडियों और सेवाओं से जोड़ने का प्रावधान था। लेकिन पहाड़ी, आदिवासी, तटीय और रेगिस्तानी क्षेत्रों में जनसंख्या कम और बस्तियां एक दूसरे से काफी दूर बसी होती हैं, इसलिए सातवीं योजना में इन क्षेत्रों में ग्रामीण सड़कों के लिए न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के मानकों में नीचे की ओर परिवर्तन कर दिया गया है। इन मानकों के अनुसार पर्वतीय क्षेत्रों में पांच सौ से अधिक जनसंख्या वाले सभी गांवों को 10 वर्षों में जोड़ने का तथा दो सौ से 500 तक की आबादी वाले गांवों में से 50 प्रतिशत को 10 वर्षों में मुख्य बाजारों और सेवाओं से जोड़ने की व्यवस्था की गई है। जहां तक जनजातीय, तटीय और रेगिस्तानी क्षेत्रों के गांवों का संबंध है, एक हजार से अधिक जनसंख्या वाले गांवों को 10 वर्षों में शत प्रतिशत तथा पांच सौ से एक हजार तक की आबादी वाले गांवों में से 50 प्रतिशत को 10 वर्षों में जोड़ने की व्यवस्था की गई है। अब राज्य सरकारों से अनुरोध किया गया है कि वे जवाहर रोजगार योजना जैसे विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के अंतर्गत उपलब्ध राशि से ग्रामीण सड़कों में सुधार करें। ग्राम पंचायतें राशि उपलब्ध होने पर यह काम प्राथमिकता के आधार पर हाथ में ले सकती हैं।

नई सड़कें

अब तक का सड़क-निर्माण कार्य अपेक्षा से कहीं कम गति से चलता रहा है। इस समय देश में कुल 18 लाख किलोमीटर सड़कें हैं। इनमें राष्ट्रीय राजमार्गों की कुल लम्बाई मात्र, 33689 किलोमीटर है जब कि उन पर दिन रात यातायात होता रहता है। कह सकते हैं कि यह, देश में कुल यातायात का एक तिहाई है। एक मोटे अनुमान के अनुसार इस शताब्दी के अंत तक मुसाफिरों के ट्रैफिक के 86 प्रतिशत और माल ढुलाई के 62 प्रतिशत के लिए सड़कों का प्रयोग करना पड़ेगा। इसके लिए इस शताब्दी के अंत तक 10 लाख किलोमीटर नई सड़कें बनानी पड़ेगी। भारतीय वाणिज्य और उद्योग मंडल– फिक्की, के एक अनुमान के अनुसार 1991-2001 तक की सड़क विकास योजना के अंतर्गत 2000 किलोमीटर एक्सप्रेस मार्ग, 66,000 किलोमीटर राष्ट्रीय राजमार्ग यानी वर्तमान से लगभग दुगुने, 1,44,000 किलोमीटर राज्य राजमार्ग, 298,000 किलोमीटर बड़ी सड़कें, 2,21,200 किलोमीटर ग्रामीण सड़कें और विशेष क्षेत्रों के लिए 2,80,000 किलोमीटर सड़कें बनानी होंगी। इन पर कुल व्यय 1983 के मूल्यों के आधार पर 65,250 करोड़ रूपये होगा, जो प्रति वर्ष 5,000 करोड़ रुपये बैठेगा। सड़कों के रखरखाव के लिए 47,450 करोड़ रूपए की अतिरिक्त विशाल राशि की आवश्यता होगी। यहां यह उल्लेखनीय है कि सातवीं योजना में भूतल परिवहन विकास की मद के लिए कुल 5,000 करोड़ रूपए ही रखे गए थे। कुलवंत राय की अध्यक्षता में गठित फिक्की की परिवहन उपसमिति की रिपोर्ट के अनुसार एक किलोमीटर एक्सप्रेस सड़क बनाने पर दो करोड़ रूपए और चार लेन वाली सड़क बनाने पर स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार 50 लाख से 80 लाख रुपये तक खर्च होते हैं। सड़कों के निर्माण के साथ-साथ एक्सप्रेस राष्ट्रीय राजमार्गों, राज्य राजमार्गों, बड़ी सड़कों और जिला सड़कों पर मुसाफिरों के लिए सुविधाओं का भी जुगाड़ करना आवश्यक होता है। इन सुविधाओं में पार्किंग, खान-पान की व्यवस्था, शौचालय, पीने के पानी का प्रबंध, प्राथमिक चिकित्सा, टेलीफोन बूथ, मोटर वाहनों आदि के लिए पेट्रोल पम्प, मरम्मत की दुकानें, हिस्से-पुर्जों की दुकानें और विश्राम घर आदि शामिल हैं। इसके लिए राजमार्गों को चौड़ा करना और उन्हें सुधारना भी आवश्यक होगा। इससे जहां विभिन्न वाहनों के आने जाने में कोई कठिनाई और विलम्ब नहीं होगा वहां मोटर ईंधन की खपत 25 प्रतिशत कम होगी, टूट-फूट कम होगी और पेट्रोल तथा डीजल की बचत से 4,000 करोड़ रूपए की विदेशी मुद्रा बचाई जा सकेगी।

इसके लिए अकेले सरकारी दमखम पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। वह पहले ही राजकोषीय संकट से गुजर रही है। राष्ट्रीय राजमार्गों का निर्माण केन्द्रीय क्षेत्र में आने के बावजूद उन्हें बनाने का काम राज्य लोक निर्माण विभाग, एजेंसी प्रणाली के अंतर्गत कराते हैं।

लेकिन इसमें भ्रष्टाचार, सरकारी साधनों के अपव्यय, चोरी तथा निम्न स्तर का काम एक आम बात हो गई है। इसलिए सड़कों की बहुआयामी उपयोगिता को दृष्टिगत रखते हुए सरकार से सड़क निर्माण में निजी परिवहन कंपनियों, उद्योगपतियों और पूंजीपतियों का सहयोग प्राप्त करने की सिफारिश की गई है। वैसे भी निजीकरण के इस दौर में निजी क्षेत्र की कंपनियों से सहायता लेने में संकोच की कोई गुंजाइश नहीं रही। राष्ट्र के उत्थान में जिससे जो सहायता मिले, उसका स्वागत किया जाना चाहिए। अगर आवश्यकता हो तो भारतीय राजमार्ग वित्त निगम बनाया जा सकता है, जिससे वह सड़कों के निर्माण के लिए बांड जारी कर धन की व्यवस्था कर सके। इस के लिए वित्तीय संगठनों से भी कर्जे लेने पड़ सकते हैं। विश्व बैंक और एशियाई विकास बैंक जैसे बहुद्देशीय वित्तीय संगठनों को भी सडक निर्माण में भाग लेने का निमंत्रण दिया जा सकता है। सड़कों एवं पुलों के निर्माण और पेय जल की परियोजनाओं आदि के कल्याणकारी सामाजिक एवं आर्थिक कार्यों के लिए मुनाफे की रकम का पूंजी निवेश करने पर आयकर में राहत देकर सरकार ने निजी उद्यमियों को इस क्षेत्र में धन लगाने के लिए प्रोत्साहित किया है। लेकिन निजी क्षेत्र की कंपनियां तभी सहयोग का हाथ बढ़ायेंगी जब उन्हें पूर्णतया निर्माण, देखभाल और राहदारी कर की उगाही का काम सौंपा जाएगा। सड़क निर्माण में स्वयंसेवी संगठनों की भी सहायता ली जा सकती है। कारण सभी का सहयोग-सहायता लेने से ही ग्रामीण क्षेत्रों की बदरंग राहों में जल्दी रंग भरे जा सकेंगे तथा धूल उड़ाती मिट्टी की कच्ची राहों पर तारकोल की दुदृढ़ समतल परतों वाली सड़कें बनाई जा सकेंगी।

समन्वय

तब सरकारी, गैरसरकारी और स्वायत्त संस्थाओं के काम में समन्वय रखना एक बड़ी आवश्यकता तथा समस्या हो जायेगी। समन्वय की आवश्यकता इसलिए भी बढ़ जायेगी कि दस लाख किलोमीटर की ये सड़कें शहरों और कस्बों में ही नहीं, सीमावर्ती क्षेत्रों, बंजर इलाकों, आदिवासी प्रदेशों तथा दूरदराज के द्वीपों के गांवों—अर्थात् सभी जगह बनानी होंगी। इन्हीं सब बातों को देखते हुए राष्ट्रीय राजमार्ग के निर्माण, विस्तार, रखरखाव, प्रबंध और मानकों आदि में सुधार के लिए भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण बनाया गया है। इस प्राधिकरण के गठन से राज्य सरकारों के अधिकारों पर कोई आंच नहीं आती उलटे यह सड़क निर्माण कार्यों में हाथ बंटाता है।

सड़कों को बनाने की सामग्री और उसकी तकनीकों में निरंतर सुधार की आवश्यकता के संदर्भ में अक्तूबर, 1973 में केंद्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान बनाया गया था। राज्यों में कई अनुसंधान प्रयोगशालाएं भी स्थापित की गई हैं। इंजीनियरों के प्रमुख संगठन, भारतीय सड़क कांग्रेस के तत्त्वाधान में राजमार्ग अनुसंधान बोर्ड भी गठित किया गया है।

यह बात निश्चित है कि अगर समय रहते सभी प्रकार की सड़कों का निर्माण जल्दी हाथ में नहीं लिया गया तो तेजी से बढ़ते वाहनों की संख्या देखते हुए इस शताब्दी के अंत तक सड़कों पर भीड़भाड़ तीनगुना बढ़ जायेगी जिसे सम्हाल पाना एक बड़ा सिरदर्द बन जायेगा। लोगों के एक जगह से दूसरी जगह आने-जाने में विलम्ब होने के साथ वायुमंडल में प्रदूषण, तेजाबी वर्षा और सड़क-दुर्घटनाओं की जो भरमार होगी वह अलग। वैसे भी आर्थिक विकास के लिए गतिशीलता अत्यंत आवश्यक है। इस संदर्भ में यह नहीं भूलना चाहिए कि सड़क परिवहन एक समेकित उद्योग है। यह मात्र आधुनिक ईंधन-कुशल वाहनों तक ही सीमित नहीं है। कुशल परिवहन प्रणाली के लिए समुचित बजट प्रावधान, सुदृढ़ सड़कों का संजाल, भूमि-प्रयोग पर अंकुश, सुचारू आयोजन चालकों की कुशलता और उनका सद्व्यवहार भी आवश्यक है। इस सबके लिए क्रियान्वयन की प्रगति पर नज़र रखते हुए खामियों-कमियों को दूर करते रहना होगा। सबसे बढ़कर राजनीतिक यथार्थ और दूरदृष्टि भी ज़रूरी है तभी इस समस्या का सही समुचित समाधान हो सकेगा।

268, सत्य निकेतन,
मोती बाग, नई दिल्ली– 21

ग्रामीण आवासों के लिए मितव्ययी सफाई विधियां

□ किशोर कुमार ठाकुर □

ग्रामीण इलाकों में शौचालय की समस्या एक मुख्य समस्या है। जीवन के लिए भोजन जितना जरूरी है, उतना ही आवश्यक है शौच करना। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये गांवों में घर-घर में शौचालय का होना निहायत जरूरी है।

भारत में, वर्तमान समय में लगभग 48 प्रतिशत परिवारों को शौचालय का अभाव है। जबकि 29 प्रतिशत सफाई कर्मचारी युक्त और सुखा शौचालय है और 23 प्रतिशत परिवारों के पास फ्लश शौचालय की सुविधा प्राप्त है। ग्रामीण दशा इस राष्ट्रीय प्रतिशत की तुलना में बहुत ही निम्न दर्जे में है। सांख्यिकी से प्राप्त आंकड़े के आधार पर विश्व में 120 मिलियन व्यक्ति सफाई सुविधा से वंचित हैं। राष्ट्रीय प्रतिशत के आधार पर अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में मात्र 15 प्रतिशत परिवार ऐसे हैं, जिन्हें इसकी सुविधा प्राप्त है। अभी भी ग्रामीण आवासों में लगभग 85 प्रतिशत आवासों में मितव्ययी सफाई शौचालय का निर्माण होना बाकी है।

शौचालय अभाव के कारण उत्पन्न समस्यायें

भारत के ग्रामीण आवासों में शौचालय की कमी के कारण ग्रामीण महिलाओं तथा बच्चों को कई मौकों पर अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। खासकर बीमारी तथा प्रसव के समय शौच हेतु महिला खेतों, खुले मैदानों और जंगलों में नहीं जा सकती। ऐसे मौकों पर अस्थायी शौचालय गड्ढा खोदकर बनाया जाता है तथा टाट लगाकर आड़ कर दी जाती है। किन्तु सुव्यवस्थित जीवन के लिए यह काफी नहीं है। गाँव में गन्दगी अधिक रहती है। यत्र-तत्र कूड़ा-करकट का साम्राज्य रहता है। बरसात के दिनों में ऐसा शौचालय जो गड्ढा खोदकर बनाया जाता है, खुला होता है तथा उसमें यदा-कदा जहरीले साँप-बिच्छू आकर छिप जाते हैं, जो शौचालय व्यवहारकर्ता के लिये घातक हो जाते हैं।

प्रदूषित वातावरण

जंगलों या खुले खेतों में शौचक्रिया के लिये जाना भी आज मुश्किल हो रहा है, क्योंकि जंगलों का अंधाधुंध कटना तथा शहरीकरण की प्रक्रिया इसके आगे प्रश्नचिन्ह लगा रहा है। आज ग्रामीण इलाकों के लोगों में आपसी फूट की प्रवृत्ति इतनी बढ़ गई है, कि न तो कोई किसी को अपने खेत होकर जाने देना पसंद करता और न ही शौचक्रिया के लिये अपने खेतों में बैठा देखना ही। एक गांव से दूसरे गांव को जोड़ने वाली सड़क तेजी से बनती जा रही है, जिससे लोगों का आवा-जाही बढ़ गई है। इससे ग्रामीण विकास में मदद तो मिली है, लेकिन रास्ते में पड़ने वाले गाँवों की स्त्रियों की शौच की समस्या भी काफी बढ़ गई है। शौचालय के लिए एकान्त तथा आड़ दुर्लभ होता जा रहा है। गांव के समीप की सड़क का दोनों किनारा हर समय मनुष्य मल से भरा रहता है, जहां पहुंचते ही ऐसी बदबू आती है कि लोगों का उस ओर होकर गुजरना बहुत ही मुश्किल हो जाता है, जो स्वास्थ्य तथा पर्यावरण दोनों के लिए बहुत ही हानिकारक है।

स्वतंत्र भारत में आज भी सिर पर मैला (मनुष्य मल) ढोने जैसी अमानवीय और अस्वास्थ्यकर कार्य उन्हीं द्वारा किये जा रहे हैं। गांव में सफाई कर्मचारियों का आभाव रहता है, इसलिए सिर पर मैला ढोने के बजाय स्त्रियां अपने हाथों से किसी मिट्टी के बर्तन में राख रखकर बच्चों का मल घर के पीछे फेंक आती हैं, जो वायु प्रदूषण का कारण बन जाता है।

अत: देश के ग्रामीण आवासों में निवास करने वाले लोगों के सामने शौचालय अभाव के कारण अनेकानेक कठिनाईयां परिलक्षित होती हैं, जिनका समाधान जरूरी है।

विकसित तकनीक

देश में कुछ स्वैच्छिक संस्थाएं ऐसी हैं, जो शौचालय निर्माण का कार्य करती हैं। फिलहाल शौचालय बनाने की दो प्रविधि हमारे सामने है, पहला सेप्टिक टैंक और सिवरेज और दूसरा है सुलभ और जनता शौचालय। सेप्टिक टैंक तथा सिवरेज ज्यादा खर्चीला तथा अधिक जगह, अधिक पानी की जरूरत के कारण अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं हो सका है। साथ ही इसमें गैस निस्सरण के लिए गैस पाइप, गन्दे जल की निकासी हेतु नाली का निर्माण किया जाता है, जो वायुमण्डल को प्रदूषित कर अनेकानेक भयंकर बीमारियों को जन्म देता है। इसके ठीक विपरीत सुलभ और जनता शौचालय कम पानी, कम खर्च, थोड़ी सी जगह और बिना गैस पाईप का बनाया जाता है। यह शौचालय पानी सोखने जैसी क्रिया पर आधारित है।

साधारण बोलचाल की भाषा में इसे 'सोख्ता शौचालय' के नाम से भी जाना जाता है। कम पानी, कम खर्चे में सुगम तरीकों से निर्मित वैज्ञानिकीय तौर पर परखा गया इस सस्ते शौचालय का नाम ''जनता शौचालय'' रखा गया है। कोई भी शौचालय व्यवहारकर्ता एक से दो लीटर पानी का उपयोग कर शौचक्रिया से निवृत हो सकता है। इस प्रकार का शौचालय समाज के हर तबके के लोगों के लिए आसान तथा अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है तथा इसकी सराहना बहुसंख्यक व्यक्तियों द्वारा की गई है। इस तकनीक का डिजाईन पर्यावरण संसाधन विकास परिषद, पटना द्वारा तैयार किया गया है।

इसके के अतिरिक्त केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्थान, रूड़की, ग्रामीण सफाई विद्यालय, अहमदाबाद ने भी कुछ विधियां विकसित की हैं। केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्थान, रूड़की द्वारा विकसित विधि पर जनवरी 1987 में जो व्यय आंका गया है, वह प्लींथ लेवल तक निर्मित होने पर 1650 रुपये और सुपर स्ट्रक्चर सहित निर्मित होने पर 2700 रुपये है।

निष्कर्ष

ग्रामीण आवासों के लिए यदि उपरोक्त विकसित तकनीक को गाँवों की ओर ले जाया जाय तो निश्चय ही यह गाँव में निवास कर रहे लोगों के लिए वरदान सिद्ध होगा।

केन्द्र तथा राज्य सरकार स्थानीय निकायों के जरिये मितव्ययी सफाई शौचालय के लाभ कुल लागत का 50 प्रतिशत लागत ऋण और 50 प्रतिशत अनुदान राशि के तौर पर नगरों में निवास कर रहे लोगों को दिला रही है, जो सफाई के क्षेत्र में सराहा गया है। भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने सभी राज्यों के मुख्य मंत्रियों को एक पत्र जारी कर इस कम लागत वाले शौचालय का लाभ अधिक से अधिक लोगों को दिलाने के लिए संकेत किया था। उन्होंने अपने पत्र में यह भी लिखा था कि नगर निगम भविष्य में बनने वाले केवल वैसे मकानों को स्वीकृति प्रदान करें जिसमें सफाई कर्मचारीमुक्त शौचालय का निर्माण किया जाना है। भूतपूर्व प्रधानमंत्री के उन शब्दों का पालन यदि गांव के लिये भी किया जाय तो निश्चित ही हमारे देश में एक सफाई कर्मचारीमुक्त समाज की स्थापना होगी, साथ ही राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का अधूरा सपना भी साकार होगा।

द्वारा– श्री उपेन्द्र नाथ झा
बिहार विद्यापीठ,
पो०—सदाकत आश्रम,
पटना– 800010

कब तक ?

आदमी-आदमी का मल ढोता रहेगा

आइये गंगा और यमुना को प्रदूषण से मुक्त कर लें तथा मैला ढोने की अमानवीय, अस्वास्थ्यकर एवं घृणित कुप्रथा का उन्मूलन कर पूज्य बापू के सपनों को साकार करें।

हमारे साथ मिलकर अपने कमाऊ शौचालय को जल प्रवाहित शौचालय में बदल कर भंगी मुक्ति योजना को साकार करें तथा गंगोत्री से गंगा सागर तक गंगा को एक जैसी स्वच्छ करें।

अपने घरों के शुष्क शौचालय को जलधोत शौचालय में परिवर्तन/निर्माण हेतु कृपया सचिव, सुलभ इंटरनेशनल, 12, अमरनाथ झा मार्ग, इलाहाबाद से सम्पर्क करें।

अवधेश कुमार पाठक
अध्यक्ष,
सुलभ इंटरनेशनल
उ. प्र. राज्य शाखा
लखनऊ

पी० के० अग्रवाल
क्षेत्रीय निदेशक
गंगा प्रदूषण, इलाहाबाद

प्रभुनाथ मिश्रा
मुख्य नगर अधिकारी एवं उपाध्यक्ष
नगर महापालिका एवं विकास
प्राधिकरण इलाहाबाद

ग्रामीण विकास में संचार माध्यमों की भूमिका

□ हरि विश्नोई □

भारत में संचार के तमाम साधनों का विकास बड़ी तेजी के साथ हो रहा है, फिर भी पिछड़े हुए ग्रामीण इलाकों में आर्थिक गरीबी से अधिक सूचना की गरीबी है। अतः आम आदमी तक सीधे और सही जानकारी पहुँचाने का सवाल बहुत महत्वपूर्ण है। पिछले चार दशकों से देश में कृषि उत्पादन एवं ग्राम्य विकास से जुड़े अनेक कार्यक्रम चल रहे हैं। अनेक एजेंसियां इसमें काम कर रही हैं, लेकिन उनसे लाभ उठाने की बात तो तभी सोची जा सकती है जब उनके बारे में हमें कहीं से कुछ जानकारी हो।

विकास सूचनाओं के अकाल की स्थिति इतनी गम्भीर है कि ग्रामवासियों को नकद, ऋण, अनुदान, खाद, बीज, कीटनाशी दवाएं और कृषि यन्त्र तो उपलब्ध हो जाते हैं किन्तु सूचना नहीं मिल पाती। फलस्वरूप उसे ग्राम सेवक या लेखपाल की दया पर निर्भर रहना पड़ता है। अशिक्षा और अज्ञान के अंधेरे में डूबे भोले-भाले, अधिकांश गांववासियों को खबर तक नहीं होती कि उनके लिए रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने, आवास की सुविधा देने और उन्हें गरीबी की रेखा से ऊपर उठाने के लिए बजट राशि का बड़ा हिस्सा खर्च किया जा रहा है। यही वजह है कि जरूरतमंदों में से बहुत से लोग चाहकर भी लाभ नहीं उठा पाते, जबकि प्रभावशाली लोग विभिन्न छद्म नामों से हर बार लाभार्थियों की सूची में शामिल होकर फायदा उठाते हैं। ग्राम्य विकास योजनाओं के व्यापक प्रचार से ही लाभार्थियों के चयन को सही एवं न्यायोचित बनाया जा सकता है, जिसके लिए जरूरत है संदेश पहुंचाने की।

विकास में संचार का स्थान सर्वोपरि रहा है। नई-नई खोज एवं प्रौद्योगिकी हमारे कार्य एवं व्यवहार को कहां तक सुगम और अर्थपूर्ण बना सकती है, यह ज्ञान हमें संचार माध्यमों से जल्दी मिलता है। प्रिंट मीडिया में पत्र-पत्रिकाओं ने इस दिशा में बहुत कुछ किया है, क्योंकि धीरे-धीरे गांवों में समाचार पत्रों की पहुंच बढ़ती जा रही है। अनेक समाचार पत्र कृषि एवं ग्राम्य जीवन से संबंधित विभिन्न मुद्दों पर नियमित रूप से सामग्री देते हैं। इलेक्ट्रानिक मीडिया की अपेक्षा इनका प्रभाव स्थाई रहता है। अखबार या पत्रिकाओं को कभी भी अपनी सुविधानुसार फुर्सत में बैठकर पढ़ा या सुना जा सकता है और अपनी पसन्द की सामग्री को एक से अधिक बार पढ़ने और समझने का अवसर मिल सकता है। जबकि रेडियो, टी.वी. को हम इस तरह नहीं सुन सकते। संचार माध्यमों के साथ आर्थिक एवं शिक्षा का पहलू भी जुड़ा हुआ है। अतः सरकार ने ग्रामीण संस्थाओं को रेडियो और टी.वी. सैट उपलब्ध कराए हैं किन्तु उनके सही उपयोग और रख-रखाव की समस्याओं पर नए सिरे से गौर करना जरूरी है तभी उनका लाभ अधिकाधिक लोगों को मिल सकता है।

विभिन्न संस्थाओं द्वारा किए गए अध्ययनों से यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में हिस्सा लेने के लिए लोग तैयार तो रहते हैं, उनमें जिज्ञासा भी है। लेकिन नेतृत्व और मार्गदर्शन का अभाव है, अतः उसे दूर करने के लिए उपाय किए जाने जरूरी हैं। साथ ही इसके लिए एक उचित, आवश्यक और अनुकूल वातावरण तैयार करना भी जरूरी है ताकि विकास कार्यक्रमों का लाभ अधिक से अधिक लोगों को मिले। स्कूल-कालेजों के पुस्तकालयों आदि में एक पत्र 'हमारा देश' आता था, उसका उपयोग किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त समाचार और विज्ञापनों के नियमित प्रकाशन से भी संदेश पहुंचाया जा सकता है। लेकिन पहले यह तय करना होगा कि समस्या क्या है और संदेश क्या हो ?

एक ओर ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका ''कुरुक्षेत्र'' तथा कृषि अनुसंधान परिषद की पत्रिका ''खेती'' को और अधिक लोकप्रिय बनाया जाना जरूरी है वहीं दूसरी ओर आकाशवाणी तथा दूरदर्शन के कृषि एवं ग्रामीण कार्यक्रमों को समय और क्षेत्र की दृष्टि से बढ़ावा दिया जाना जरूरी है। प्रत्येक जिला मुख्यालय पर स्थानीय रेडियो स्टेशन बनाने का लक्ष्य रखा गया है। आठवीं योजना में अभी और रेडियो स्टेशन खोले जाएंगे। लेकिन मौजूदा कुल आकाशवाणी केन्द्रों में से केवल 42 ही ऐसे हैं, जो ग्रामीण श्रोताओं के लिए कार्यक्रम प्रसारित करते हैं निःसन्देह इस प्रसारण को बढ़ाकर समस्त केन्द्रों पर करने की जरूरत है जिसे नकारा नहीं जा सकता है।

गाँवों के समग्र विकास के लिए जो कुछ हो रहा है उसमें खर्च हो रही विशाल धनराशि तथा ऊपर से नीचे तक लगी कुल मानव शक्ति को देखते हुए स्थिति में और अधिक तेजी से बदलाव आ

सकता है। लेकिन सही जानकारी के अभाव में बहुत कुछ नहीं हो पाता। आम आदमी की बात तो अलग कभी-कभी उन लोगों को ही पूरी जानकारी नहीं रहती जो स्वयं किसी न किसी रूप से गांवों के विकास से जुड़े हैं। विभिन्न क्षेत्रों में विभागीय कार्यकर्ताओं के लिए जो दायित्व निर्धारित हैं उनके संबंध में भी वे आधी-अधुरी जानकारी के साथ काम करते पाए गए हैं। अतः कर्तव्यों और दायित्वों के प्रति उदासीनता को दूर करने के लिए शिक्षण और प्रशिक्षण और संचार का सदुपयोग जरूरी है।

भारतीय जनसंचार संस्थान ने 1981 में 'ग्रामोन्मुखी पत्रकारिता पुनश्चर्या पाठ्यक्रम' आयोजित किया था जो हिन्दी भाषा में था, किन्तु इसके बावजूद उसमें प्रशिक्षणार्थियों की संख्या बीस-बाईस थी। इस तरह के प्रशिक्षण कार्यक्रमों को और अधिक व्यापक बनाया जाना चाहिए, क्योंकि यह बात समझ में आने लगी है कि ग्रामीण विकास के लिए जन संचार माध्यमों का महत्व है। राष्ट्रीय ग्राम्य विकास संस्थान, हैदराबाद में आयोजित सूचना से संबंधित एक संगोष्ठी में भी कई महत्वपूर्ण मुद्दे उभर कर सामने आए थे जो ग्रामीण प्रेस सुदृढ़ीकरण पर सोचने की जरूरत का अहसास कराते हैं। अतः केन्द्र सरकार द्वारा क्षेत्रीय प्रचार निदेशालय और विज्ञापन और दृश्य प्रचार निदेशालय (डी.ए.वी.पी.) के अतिरिक्त राज्य सरकार के सूचना एवं जनसंपर्क निदेशालयों को भी उपलब्धियों के साथ शिक्षात्मक एवं सूचनात्मक संदेशों पर विशेष जोर देना चाहिए।

ग्रामीणों के लिए संचार का रूख दोतरफा होना चाहिए ताकि उनकी प्रतिक्रिया, उनकी राय उनके कार्यक्रमों और अनुभवों का पता चल सके। उनकी सीमाओं और समस्याओं को दृष्टिगत रखते हुए कार्यक्रम का कार्यान्वयन हो सके। कम खर्च की कारगार कृषि प्रणाली का संदेश स्थाई रूप से ग्रामवासियों के मध्य पहुंचाने के लिए भी सक्षम एजेंसियों का होना अति आवश्यक है ताकि कृषि पर विशेष बल देते हुए सड़क, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि की बुनियादी जरूरतों के साथ-साथ संचार का विकास भी ग्रामीणों को लाभान्वित कर सके। चालू कार्यक्रमों और नई योजनाओं की जानकारी आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग तक समय-समय पर पहुंचाए जाने की जरूरत है। यद्यपि गांव की गरीब और अशिक्षित आबादी को समझाना कोई आसान काम नहीं है, लेकिन यह जरूरी है ताकि उनके सोचने, रहने-सहने और काम करने का ढंग बदला जा सके। इसके लिए सही 'माध्यम' क्या हो ? इसका निर्धारण स्थानीय आवश्यकता को देखकर ही किया जाए क्योंकि मार्शल मैकलूहन ने बिल्कुल ठीक ही कहा है कि 'माध्यम ही संदेश है' और यह बात ग्रामीण विकास के संदर्भ में बिल्कुल सही लगती है।

कृषि एवं ग्रामीण विकास के लिए चल रही तमाम योजनाओं और कार्यक्रमों की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि कितने लोग उनसे लाभान्वित होते है ? किन्तु लाभ उठाने से पहले लाभार्थियों को उनकी पूरी और सही जानकारी होना बहुत जरूरी है। प्रभावी जनसंचार के अभाव में विस्तृत प्रौद्योगिकी तथा विज्ञान को लोगों तक पहुंचाना असंभव रहता है। केवल पुस्तकों से प्राप्त ज्ञान व्यवहार में उतारने की बात पुरानी हो चुकी है। अब रेडियो तथा दूरदर्शन से यह कार्य हो रहा है। ये दोनों माध्यम हमारे विकास की गति को तेज करने में सहायक सिद्ध हुए हैं। देश के अधिकांश जिले निकट भविष्य में राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र से जुड़ जाएंगे। कोई भी आदमी टेलीफोन का डायल घुमाकर सूचनाएं प्राप्त कर सकेगा। यह उदाहरण संचार क्रान्ति के क्षेत्र में अकेला नहीं हैं। दृश्य-श्रव्य तकनीक (आडियोविजुअल टैक्नोलोजी) ने कृषि एवं विज्ञान की दिशा में बहुत महत्वपूर्ण योगदान किया है। क्योंकि यह विकासशील देशों के लिए एक प्रमुख मुद्दा है।

निर्बल वर्ग के कल्याण हेतु जो कार्यक्रम हैं उनमें भी यह आवश्यक है कि जरूरतमंदों को उनकी खबर हो। आम आदमी की समुचित भागीदारी भी उसमें तभी निश्चित हो सकती है जबकि गरीबों को उनके लिए चल रही योजनाओं का लाभ मिल सके। क्योंकि जन सहयोग के अभाव में प्रत्येक कार्यक्रम थोपा हुआ सा लगता है और जन सहयोग प्राप्त करने की दिशा में भी जनसंचार के साधनों का उपयोग किया जाना बहुत जरूरी है।

सरकारी नीतियों तथा विकास कार्यक्रमों का संदेश गांवों तक पहुंचे इसके लिए हमारे देश में मौजूदा संचार तंत्र का जो व्यापक ढांचा है उसमें पत्र-पत्रिकाएं, रेडियो, टी.वी. और ग्राम स्तरीय कार्यकर्ताओं की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। नियोजित प्रयास शुरू से ही किए जा रहे हैं। अतः आजादी के 43 वर्ष बाद आज हम यह कह सकते हैं कि हमारे देश ने अब तक जो विकास का सफ़र किया, हरितक्रांति, जनस्वास्थ्य और शिक्षा आदि के क्षेत्र में जो उपलब्धियां रही हैं, उस सबमें हमारे नए पुराने संचार माध्यमों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक एवं आर्थिक विकास की गति में तेजी आई है, उसके हालात बदले हैं। गांववासियों के प्रयास, भरपूर कृषि उत्पादन अथवा रोजगार के साधनों में वृद्धि उसका कारण रहे हैं।

लेकिन अंततोगत्वा सूचना हस्तांतरण की निरन्तर प्रवाहित प्रक्रिया को भी उसका श्रेय जाता है।

जन संचार के क्षेत्र में जहां हमारे देश में आज भी कठपुतली और स्वांग जैसे परंपरागत माध्यम प्रचलित हैं वहीं दूसरी और रेडियो और दूरदर्शन के अलावा स्लाइड तथा वीडियो के पांव भी गाँवों की तरफ बढ़ रहे हैं। प्रवासी भारतीयों की एक संस्था ने कहा है कि वह देश भर के ग्रामीण इलाकों में करीब दस हजार वीडियो गृह स्थापित करेगी। देर-सबेर इस नवीनतम प्रौद्योगिकी और इलैक्ट्रानिक क्रान्ति के सुपरिणाम महानगरों से होते हुए गांवों तक पहुंचेंगे। किन्तु यह भी सुनिश्चित करना आवश्यक होगा कि सूचना, शिक्षा और मनोरंजन के ये शब्द और चित्र अपना दुष्प्रभाव न छोड़े, अर्थात ऐसे कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया जाए, जिनसे भोले-भाले ग्रामवासियों के बीच वैचारिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो। साथ ही साथ उनकी समस्याओं को उन्हीं के स्तर पर सुलझाने में भी मदद मिल सके, जिसकी वे प्रतीक्षा कर रहे हैं।

संचार और विकास

जो व्यावसायिक पत्र-पत्रिकाएं निजी क्षेत्र में है उनमें पाठकीय रूचि के अनुसार सामग्री रहती है। जिसमें अधिकांश समाचार सनसनीखेज मिलते हैं लेकिन हमारे देश ने आजादी के बाद नियोजित विकास का जो सफरं पूरा किया है उसके बारे में जानकारी देने की जिम्मेदारी प्रायः सूचना एवं जनसंपर्क विभाग के विज्ञापनों या विज्ञापन और दृश्य प्रचार निदेशालय की होती है। विकासशील देश में खासकर विकासोन्मुखी देश में लेखन को भी प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए, ताकि अनछुए बिन्दुओं पर भी गहन विश्लेषण संभव हो सके।

संचार के जितने भी साधन है उनमें सबसे अधिक सरल और स्थायी प्रभावी माध्यम है– अखबार। इसलिए सिर्फ गांवों के ही नहीं वरन् समूचे राष्ट्र के निर्माण और विकास में जो भूमिका ये अदा कर सकते हैं, उतना दूसरा नहीं। प्रत्यक्ष जनसंपर्क को उभारने की दृष्टि से उदाहरणार्थ पूर्वी उत्तर प्रदेश के गांवों में प्रदेश सरकार ने विश्व बैंक की सहायता से एक योजना तैयार की थी जिससे कृषि उत्पादन में वृद्धि करने की नई-नई विधियों की सूचना किसानों तक पहुंचाने और उन्हें अपनाने के लिए प्रेरित करने और राज्य के ग्रामीण विकास को उन्नत दिशा देने के लिए 'किसान सहायकों' की नियुक्तियां की गई। इन संचारकों द्वारा हरित क्रान्ति का लाभ लघु एवं सीमांत कृषकों को भी मिलना सुनिश्चित हो सका। इसके द्वारा जहां एक ओर छोटे किसानों तथा निर्बल वर्ग को सूचना मिलने में सुविधा मिली, वहीं दूसरी ओर ग्रामीण संचार को और अधिक प्रभावी बनाया गया क्योंकि ऋण, खाद, बीज आदि उपलब्ध कराने के लिए तो गांवों में सहकारी समितियां, बैंक और विभिन्न एजेंसियां है, लेकिन सूचना के लिए कोई संस्था नहीं है। अतः संचार के अन्य साधनों में रेडियो, टी.वी., फिल्म स्लाइड, प्रदर्शनी, पोस्टर, मुद्रित सामग्री तथा कठपुतली जैसे परंपरागत माध्यमों के द्वारा आम जनता तक उनकी जरूरत के संदेश पहुंचाने का कार्य योजनाबद्ध ढंग से चलाया जाना चाहिए।

परंपरागत माध्यम

देश में ग्रामीण क्षेत्रों का विकास इस बात पर निर्भर करता है कि वहां सड़क, स्वास्थ्य और शिक्षा की क्या व्यवस्था है तथा उसमें गांव वासियों का क्या योगदान और भूमिका है। किस तरह बुनियादी जरूरतों को पूरा किया जाना है तथा बाद में उनका रख-रखाव कैसा है। जिम्मेदारी का अहसास कराना आज के समय में सबसे बड़ी जरूरत है, ताकि नागरिकता का बोध उत्पन्न हो। देखना यह भी है कि ये लोग किस हद तक विकास के संदेश को समझ रहे हैं और उससे शिक्षा ले रहें हैं ? संचार के परंपरागत माध्यमों का उपयोग इस दिशा में कारगर सिद्ध हुआ है। अतः आज इस विषय पर नए सिरे से सोचने की जरूरत है।

लोकगीतों आदि की तरफ ग्रामवासियों का आकर्षण अब भी बरकरार है। विभिन्न क्षेत्रों में वहां की परिस्थितियों के अनुसार यद्यपि आवश्यकताएं भिन्न हो सकती हैं। किन्तु गांव में जानकारी की जरूरत अत्यधिक है। कुछ संगठन कठपुतली के माध्यम से आज भी गांव में अपनी योजनाओं के लिए कार्यक्रम कर रहे हैं। समस्या मूल रूप से भीड़ जुटाने की नहीं भीड़ का ध्यान कुछ देर के लिए गंभीरता के साथ अपनी ओर खींचने की होती है। विभिन्न समस्याओं के लिए रोचक कथानक लेकर कुछ खास आलेखों पर यदि शो कराए जाएं तो कठपुतली गांववासियों के लिए केवल मनोरंजन ही नहीं वरन् शिक्षा का माध्यम भी बन सकती है। क्योंकि हमारे देश में साक्षरता की दर अत्यन्त कम है और ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त विद्युत आपूर्ति न होने के कारण अन्य माध्यमों का उपयोग अधूरा रहता है।

विविधता में तो हर कोई सुख का अनुभव करता है। चाहे मनोरंजन के साधन ही क्यों न हो। हंसती, गाती और नाचती हुई कठपुतलियां हंसी-मजाक से भरपूर संवादों द्वारा वह सब कह सकती है कि आपके रेडियो, टी.वी. और समाचार पत्र सब एक तरफ रखे रह जाते हैं।

अब कठपुतली निर्माण में नए शिल्प का विकास हुआ है आवाज

शेष पृष्ठ 31 पर

इलाहाबाद जलसंस्थान, इलाहाबाद

जल अमूल्य है। **इसे नष्ट न करें।**

आपको अधिकाधिक स्वच्छतम पेयजल

उपलब्ध कराने हेतु सतत प्रयत्नशील है

और

आपसे अनुरोध है कि

1. कर एवं जलमूल्य का भुगतान समय से करें।
2. सार्वजनिक नलों को खुला न छोड़ें।
3. नल की टोटी का वासर खराब होने पर तुरन्त बदलवा लें।
4. रात में नल बन्द होने पर टोटी अवश्य बन्द कर दें ताकि प्रात: 4 बजे से आपके उठने तक पानी बेकार न बहे।
5. बिना टोटी के सार्वजनिक नल और पाइप लाइन के लीकेज की सूचना कृपया महा प्रबन्धक कार्यालय, कन्ट्रोल रूम, जल संस्थान को फोन नं० 602015 पर दें। या जोन— 1—602155, जोन—2—52317 को दें।
6. घरेलू कनेक्शन का पानी बाग बगीचा सींचने अथवा अन्य व्यापारिक प्रयोग में न लायें न इस प्रयोजन से किसी को दें।
7. किसी प्रकार का पम्प, पाइप लाइन पर सीधा न लगायें। यह कार्य अवैध तो है ही साथ ही साथ ऐसा करने से क्षेत्र की जलापूर्ति पर दुष्प्रभाव पड़ता है।
8. सूचना मिलते ही आपके पाइप कनेक्शन में मीटर न हो तो मीटर लगवा लें।
9. बच्चों को पाइप या वाशबेसिन में पानी बहाने से रोकें।
10. बाढ़ या बीमारी फैलने पर पानी उबाल कर पीयें।
11. प्लास्टिक के थैले व टुकड़े इत्यादि फ्लस व नालियों में न डालें ऐसा करने से सीवर बन्द हो जाते हैं प्लास्टिक के टुकड़ों के कारण से बन्द सीवर को फिर से साफ करना कठिन हो जाता है।
12. सीवर लीक की सूचना प्रबन्धक सीवर गऊघाट को फोन नं-50252 पर दें।

नोट– जलसंस्थान परिसर में अच्छी साफ मिट्टी रु० 80.00 प्रति ट्रक की दर से बिकाऊ है।

(श्यामचरण गुप्ता)	**(पी०एन०मिश्रा)**	**(शिवराम शुक्ला)**
अध्यक्ष/नगर प्रमुख	**मुख्य नगर अधिकारी**	**महा प्रबन्धक**

जोकाई 91-92 DI-24.1.92

हिमाचल के ग्राम्य जीवन में महिलाओं का योगदान

□ डा० सुधा गर्ग □

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। स्त्री और पुरूष दोनों मिलकर ही एक उन्नत एवं प्रगतिशील समाज का निर्माण करते हैं। अतः स्त्री समाज का अभिन्न अंग है। भारतीय संस्कृति में नारी हमेशा से ही काफी महत्वपूर्ण और गौरव की अधिकारिणी रही है। नारी के तीन रूप हैं– कन्या, पत्नी और माँ। इन तीनों ही अवस्थाओं में उसकी रक्षा, मान-मर्यादा एवं प्रतिष्ठा के संरक्षण का पवित्र कार्य पुरूष के ऊपर ही है। कहने का तात्पर्य यह है कि नारी सदा से पुरूष की छत्र-छाया में ही अपनी गुण-गरिमा का विस्तार करती आयी है।

भारत के अन्य राज्यों की अपेक्षा हिमालय के आगोश में विद्यमान सुरम्य राज्य हिमाचल प्रदेश के ग्रामों में नारियों का अपना ही गौरवपूर्ण अस्तित्व है। यहाँ के समाज में स्त्रियों का सामाजिक स्तर अत्यंत विशिष्ट एवं प्रभावपूर्ण है। भारतवर्ष में महिला समाज यदि पूर्णरूपेण कहीं स्वतंत्र हैं तो वह है समग्र हिमाचल प्रदेश के पिछड़े पहाड़ी इलाकों में। पहाड़ी सांस्कृतिक धरोहर पर सदा से ही नारी का वर्चस्व रहा है। पहाड़ी समाज में उसे काफी सम्मान प्राप्त है, क्योंकि नारी ही यहाँ के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन का मूलाधार है। वह निरन्तर सामाजिक एवं सांस्कृतिक विरासत का मार्गदर्शक रही है। युगांतकारी संस्कारों के कारण उसने पुरातन-प्रथाओं, रीति-रिवाजों तथा परम्परा का निर्वाह इस प्रकार किया है, जिसके फलस्वरूप पहाड़ी स्त्री का सांस्कृतिक जीवन बहुत ही प्रतिबद्ध रहा है। स्वतंत्रता से पूर्व सांस्कृतिक प्रवाह को पहले मुस्लिम संस्कृति ने फिर पाश्चात्य संस्कृति ने प्रभावित किया, परन्तु ग्रामीण हिमाचली नारी सहस्त्रों वर्ष प्राचीन अपनी सभ्यता एवं संस्कृति को आज भी अपने आँचल में छुपाए हुए है। प्राचीन ऋषि-मुनियों, साधु-संतों ने मानव-जाति के हितों व समृद्धि की रक्षा हेतु वैदिक काल में जिन सामाजिक नियमों, रीति-रिवाजों का सृजन किया था, वे रीति-रिवाज परम्परागत ढंग से आज भी हिमाचल के पर्वतीय समाज में सजीव हैं। यहां के किन्नौर, लाहौलस्पिति, भरमौर, चौपाल, डोडरकार, चम्बा, कुल्लू आदि पिछड़े क्षेत्रों में निवास करने वाली घुमक्कड़ गूजर, गद्दी इत्यादि जाति की स्त्रियों में आज भी पुरातन संस्कृति के अवशेष यथा - परम्परागत वेशभूषा, अलंकार सज्जा, स्थानीय ग्रामीण देवी-देवताओं, जादू-टोने, भूतप्रेत इत्यादि पर अगाध अंधविश्वास, तीज-त्यौहार व मंगलकार्यों के प्रति विशेष रूचि आदि देखने को मिलते हैं।

इस प्रदेश में नारी के प्रधानतया दो रूप दिखलाई देते हैं। समाज के संभ्रांत, सुसंस्कृत एवं उच्च कुलीन वर्गों में वह पराधीन जैसा जीवन व्यतीत करती हैं। जीवन की प्रत्येक अवस्था यथा– बाल्यावस्था में माता-पिता पर, विवाहोपरांत पति पर तथा विधवा हो जाने पर अपने माता-पिता, सास-सुसर, पुत्रों अथवा अन्य सगे-सम्बंधियों पर ही आश्रित रहती हैं। वह घर की चारदीवारी तक ही सीमित रहती हैं। भोजन पकाना, चक्की-चलाना, ऊन कातना, कशीदाकारी करना, बुनना, सिलना इत्यादि समस्त गृहकार्यों को कुशलता व तन्मयतापूर्वक करती हुई देखी जा सकती हैं। घर में बड़े-बुजुर्गों से भी पर्दा करती हैं और पुरूष की छाया भी स्वयं पर पड़ने नहीं देतीं। समाज उन्हें शील, संयम व उच्चपति व्रत्य की पवित्र साकार मूर्ति मानता है। इन स्त्रियों में पतीत्व के प्रति गर्व है। गढ़वाल से लेकर कुल्लू तक के जल संग्रहण क्षेत्र में 'भूंडा' नामक विशेष यज्ञ में 'जलपूजन' के अवसर पर अपार जन समुदाय के समक्ष मनोवैज्ञानिक ढंग से उनके सतीत्व की परीक्षा ली जाती है। उच्चवंशीय कुलीन सुहागिनें जलपूरित बावड़ी में खड़ी होकर प्रथम या द्वितीय सोपान से बावड़ी पर स्थित कलश व करोतियों की पूजा करती हैं। इसके विपरीत निम्न या मध्यम वर्गीय महिलाओं का सामाजिक स्तर अति स्वतंत्र एवं महत्वपूर्ण है। स्त्रियाँ पुरूषों से अधिक कार्य करती हैं, क्योंकि पुरूष रोजी-रोटी के लिए दूसरे नगरों में चले जाते हैं। ऐसे में घर-बाहर के प्रत्येक छोटे-बड़े कार्यों का उत्तरदायित्व स्त्रियों पर ही पड़ जाता है। दिन अभी ठीक से निकला भी नहीं कि ये चक्की चलाने, धान कूटने, जानवरों को चारा पानी देने, दूध दुहने और घर-गृहस्थी के कामकाजों के साथ-साथ खेतों की जुताई, बुवाई, निलाई, गुड़ाई, कटाई, खलिहानों, जंगलों से अनाज, लकड़ी व घास लाने जैसे सभी कार्यों को बड़े ही परिश्रम व आत्मविश्वास से करती हैं, फलस्वरूप वह अत्यंत स्वावलम्बी दिखाई देती हैं। यही कारण है कि कठोर परिश्रम ने उन्हें स्वतंत्र एवं आत्मनिर्भर बना दिया है। यद्यपि इन कार्यों को करते समय वह दीन-हीन और मलिन दिखाई देती हैं तथापि वह अपने मूल्य एवं अधिकार के प्रति जागरूक रहती हैं। उनमें

आत्मविश्वास एवं आत्मसम्मान की भावना कूट-कूट कर भरी होती है। पहाड़ी समाज में उसे नया जीवन साथी चुनने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। यदि कन्या को पहले ही दिन पति का स्वभाव पसंद न आये तो वह उसी दिन बिना किसी लड़ाई-झगड़े के माँ-बाप के घर लौट सकती है। इस प्रकार न तो कोई लड़की यहां परतंत्र होती है और न ही दोनों पक्षों में कोई शत्रुता जन्म ले पाती है। यह सम्बंध पुनः स्थापित हो सकता है अथवा दोनों नई जगह अपना-अपना सम्बंध तय कर विवाह के अवसर पर पहले वालों को भी सादर आमंत्रित करते हैं।

अतः पुनः विवाह करने में इन्हें कठिनाई नहीं होती क्योंकि खेतों-खलिहानों में समानतापूर्वक कार्य करने की क्षमता ने नारी को महत्वपूर्ण बना दिया है। ऊपरी क्षेत्रों में नारी के बिना काम चल नहीं सकता। कोई स्त्री किसी भी कारणवश पतिगृह का परित्याग कर जब अपने माता-पिता के घर रहने लगती है, उस समय यदि कोई अन्य व्यक्ति पुनः विवाह करना चाहे तो वह व्यक्ति उस महिला के माता-पिता के घर बातचीत करने जाता है। बात पक्की हो जाने पर लड़की की शादी सम्पन्न हो जाती है। समाज में उसे पहले जैसा ही प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त रहता है।

वैवाहिक सम्बंधों, धार्मिक अनुष्ठानों एवं तीर्थयात्रा आदि अवसरों पर उसे काफी महत्व दिया जाता है। वैवाहिक सम्बंधों को निश्चित करते समय यहाँ मैदानी क्षेत्रों के विपरीत लड़के वालों को पहल करनी पड़ती है। वर का पिता कन्या के पिता के घर कतिपय आभूषण, वस्त्र व नकद राशि लेकर जाता है। यदि कन्या के माता-पिता द्वारा वे सभी उपहार स्वीकार कर लिए जायें तो सम्बंध पक्का माना जाता है। तदोपरांत विवाह के अवसर पर वर का पिता कन्या के पिता को विवाह में उचित खर्च होने वाली राशि प्रदान करता है। यहाँ का समाज कन्या प्रधान है।

धार्मिक उत्सवों एवं अनुष्ठानों के समय भी पति के साथ पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य मानी गई है। यहाँ पत्नी पति की परम सहयोगिनी समझी जाती है। उसकी अनुपस्थिति में सम्पन्न प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान अपूर्ण समझा जाता है। यहाँ एक लोकोक्ति प्रसिद्ध एवं प्रचलित है कि 'बिना पत्नी के प्रत्येक वस्तु अंधकारमय रहती है। जिसके पत्नी नहीं उसका इस जगत् में कोइ नहीं है।' अब यहाँ बहुपत्नी प्रथा प्रायः समाप्त हो गई है।

किन्नौर व लाहौल-स्पिति में अब भी कहीं-कहीं बहुपति प्रथा दिखलाई पड़ती है। यद्यपि इसका प्रभाव क्षेत्र बहुत ही सीमित है लेकिन कारण आर्थिक है। पहाड़ी क्षेत्र होने के कारण इनके पास भूमि एवं पशु सीमित हैं। यदि सभी भाई अलग-अलग विवाह कर लेंगे तो ज़मीन-जायदाद का बंटवारा होने से घर नष्ट हो जायेगा। बहुपति-प्रथा के बावजूद यहाँ की स्त्रियों को कभी किसी प्रकार के तनाव या दुख में देखना अपवाद है। सम्भवतया ये बेफ़िक्री इन्हें प्रकृति की गोद में रहने के कारण प्राप्त हो। पहाड़ी के सीढ़ीदार खेतों में काम करने वाली, कंकरीले अथवा पथरीले मार्गों से पानी लाने वाली इन स्त्रियों का जीवन जितना कठिन एवं संघर्षमय होता है इनका व्यवहार उतना ही निश्चल तथा निष्कपट होता है। नम्रता, ईमानदारी, अतिथि-सेवा धर्म भीरूता, उदारता, परिश्रम, सहयोग, दान, सहिष्णुता आदि गुण यहाँ की नारियों में विद्यमान हैं। यहाँ के जंगलों में तथा पहाड़ों के ऊपरी क्षेत्रों में निवास करने वाली गुजरी और अन्य यायावरी महिलायें अत्यधिक कठोर जीवन व्यतीत करती हैं। यायावरी स्त्री प्रसव के एक दिन बाद ही अपने नवजात शिशु को झोली (कंधे पर पड़े हुए दुपट्टे में) में डालकर अपनी यात्रा आरम्भ कर देती है।

किन्नौर क्षेत्र की स्त्रियाँ स्वयं शराब बनाती हैं। घर आये अतिथियों को स्वयं अपने हाथों से मदिरा पेश करती हैं, किन्तु स्वयं मदिरा नहीं पीतीं। इस क्षेत्र में मदिरा का प्रयोग चाय-पानी की तरह होता है। यदि घर में कोई अकेली महिला हो और उस समय कोई अपरिचित अतिथि आ जायें तो वह उसे अपने घर में आदर-सत्कार के साथ शराब देकर उसका हालचाल पूछती हैं। यदि कोई व्यक्ति उसकी उदारता का अनुचित अर्थ लगाये तो वह बिना चिल्ल पौं के उसका कचूमर निकाल कर आत्मरक्षा भी कर लेती हैं। खेत-खलिहानों, जंगलों से अनाज, लकड़ी व घास ढोने वाली ये रमणियाँ बहुत बलवती भी होती हैं।

यहाँ की ग्रामीण नारियों को अपने प्रदेश की धर्म, कला व संस्कृति से अगाध प्रेम है। पुरूषों की अपेक्षा महिलायें अधिकांशतया अपनी परम्परागत वेशभूषा को धारण किये रहती हैं। सांस्कृतिक परम्पराओं का प्रभाव इनके नृत्यों, नाटकों तथा सामूहिक मेलों, उत्सवों तथा वैवाहिक अवसरों पर देखने को मिलता है जब ये अपनी प्राचीन परम्परागत वेशभूषा— पट्टु, रंजटा व धाटू इत्यादि को धारण किए हुए तथा नाना-आभूषणों से सुसज्जित रहती हैं। इन अवसरों पर पुरातन हिमाचल की कला-संस्कृति, रीति-रिवाज एवं रहन-सहन की स्पष्ट झलक मिलती है। इनकी वेशभूषा, केशसज्जा एवं अलंकारों के आकार-निर्माण आदि पर हजारों वर्ष पुरानी मोहन-जोदड़ों, हड़प्पा व सिंधु घाटी सभ्यता की स्पष्ट छाप है। संग्रहालय में स्थित हड़प्पा व मोहन-जोदड़ो की मानव मूर्तियों एवं मुद्राओं पर अंकित चित्रों में जैसी वेशभूषा, केशसज्जा व अलंकरणसज्जा चित्रित है, बिल्कुल वैसी ही वेशभूषा केशसज्जा एवं

सिर से पैर तक उसी प्रकार के आभूषणों से अलंकृत नारियाँ आज भी हिमाचल-प्रदेश के कतिपय भागों में देखी जा सकती हैं। संग्रहालय में रखे पुराने परिधानों एवं आभूषणों को देखकर हमें ऐसा प्रतीत होता है मानों हिमाचली-नारी के पुराने आभूषणों को एकत्रित कर यहीं सजा दिया गया हो।

यद्यपि वर्तमान जीवनस्तर तथा भौतिक साधनों की दृष्टि से हम इन्हें कमजोर एवं पिछड़ी तो कह सकते हैं लेकिन सांस्कृतिक दृष्टि से यह अन्य राज्यों की अपेक्षा सर्वाधिक समृद्ध हैं। यहां की पहाड़ी ग्राम्य-महिलाओं को जब भी समय मिलता है, तो वह स्वयं को नृत्य-गायन में व्यस्त कर लेती हैं। विविध पर्वों, समारोहों और उत्सवों के अवसर पर मंदिरों के प्रांगणों, खुले मैदानों एवं तीर्थस्थलों पर ये मृदंग की थाप व शहनाई की गूंज पर लय-ताल के साथ एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर झूमती हुई सामूहिक रूप में तल्लीनतापूर्वक नृत्य करती हैं। यहाँ के समाज में महिलाओं को पर्दे में रखने की प्रथा नहीं है। मेले-त्यौहारों के अवसरों पर इन महिलाओं को पुरूषों के हाथ पकड़ कर घंटों मस्ती से नाचते-गाते हुए देखा जा सकता है।

पहाड़ी ग्राम्य-जीवन में सांस्कृतिक-पर्वों का विशिष्ट स्थान हैं। यहां की महिलायें प्रत्येक पर्व को उल्लास व परम्परागत ढंग से मनाती हैं। इनके मन में अपने धर्म और परम्परागत रीति-रिवाजों के प्रति काफी सम्मान है। इन अवसरों पर तो प्रत्येक ग्राम में गीत, वाद्य तथा नृत्य की त्रिवेणी प्रवाहित रहती है।

इनकी धार्मिक आस्था व धर्म के प्रति अटल विश्वास देखते ही बनता है। तीज-त्यौहार व मेलों को ये आज भी पुरातन सांस्कृतिक परम्पराओं के आधार पर ही मनाती हैं। देव व आदम के सम्बंध की परम्परा यहाँ के पहाड़ों में आदिकाल से चली आ रही हैं, क्योंकि हिमाचल प्रदेश प्राचीनकाल से ही देवी-देवताओं का निवास स्थल माना गया है।

ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा का समुचित प्रचार व प्रसार होते हुए भी प्राचीन मान्यताओं, किंवदन्तियों तथा धार्मिक अंधविश्वास की बहुतायत है। डाक्टर, शिक्षिका आदि होते हुए भी अधिकांशतया महिलाओं में गृहसंस्कारों के फलस्वरूप धार्मिक अंधविश्वास की कमी नहीं हैं। कारण, यहाँ का सम्पूर्ण वातावरण एवं संस्कार रूढ़िग्रस्त हैं। प्राचीन मान्यतायें उनमें कूट-कूट कर व्याप्त हैं। देवमान्यताओं एवं परम्पराओं पर भी रूढ़ियां और अंधविश्वास हावी होने लगे हैं, जिसकी शिकंज में पहाड़ी महिला समाज पूरी तरह से जकड़ा हुआ है।

इस प्रकार समूचे भारतवर्ष में हिमाचल ही एकमात्र ऐसा राज्य है जहां के ग्रामीण समाज में महिलाओं का प्रतिष्ठित स्थान होने के कारण यहां दहेज प्रथा, सती-प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियाँ नहीं है, अपितु नारी उत्थान में सहायक पुनर्विवाह, विधवा-विवाह का प्रचलन है। ऐसी स्त्रियों को समाज में हेयदृष्टि से नहीं देखा जाता है जबकि अन्य राज्यों में आज भी विधवा स्त्री अपना सम्पूर्ण जीवन घुट-घुट कर ही बिताती है।

एपिल हाउस, निकट टिम्बर हाउस,
सरकुलर रोड, शिमला, 1.

पृष्ठ 12 का शेष

अत: इन सेवाओं को तत्काल मुहैया कराया जा सकेगा।

(4) सड़कों के न होने से ग्रामवासी अन्य गांवों और क्षेत्रों से कटे हुए हैं जिससे सांस्कृतिक आदान-प्रदान न होने से ग्रामीण समाज विखण्डित है। अब सुसभ्य समाज के निर्माण की सम्भावनायें प्रबल हो जायेगी।

(5) ग्रामीण क्षेत्रों में प्राय: उच्च स्तर की शैक्षिक संस्थाओं का अभाव रहता है। सड़कों का जाल बिछ जाने से ग्रामीण युवा वर्ग भी अच्छी शिक्षा प्राप्त करने के लिए इन शैक्षिक संस्थाओं का उपयोग करेगा जिससे शिक्षित समाज का निर्माण होगा।

ग्रामीण क्षेत्रों का सामाजिक-आर्थिक विकास मुख्यत: सुविधाओं के विस्तार पर निर्भर है, इसलिए सड़कों की योजना इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर बनाई जानी चाहिए कि अर्थव्यवस्था का ग्रामीण स्वरूप बना रहे और छोटे-छोटे कस्बे विकसित हों। इससे लोगों के गांव छोड़ कर शहरों में जा बसने पर रोक लगेगी तथा शहरों और गाँवों के रहन-सहन में विषमता भी कम होगी। इसके साथ ही अन्तर्देशीय यातायात की बढ़ती हुई आवश्यकतायें पूरी करने के लिए राष्ट्रीय राजमार्गों का भी पर्याप्त और समुचित विस्तार किया जाना चाहिए।

लक्ष्य यह है कि सन् 2001 तक 27 लाख किलोमीटर लम्बाई की सड़कों का निर्माण हो जाए और प्रत्येक 250 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में 85 किलोमीटर लम्बी सड़कों का जाल बिछा दिया जाए। इन सड़कों के केवल रख-रखाव पर ही 4 खरब 70 अरब रुपये खर्च होंगे। इससे बड़े पैमाने पर रोजगार भी उपलब्ध होगा क्योंकि सड़क निर्माण का काम ही ऐसा है कि इसमें श्रम की बहुत आवश्यकता होती है।

540, पाना उद्यान
नरेला, दिल्ली—110040

बिहार में महिला श्रमिकों की स्थिति

□ केदारनाथ सिंह □

हमारे संविधान में पुरूष एवं महिला को समान अधिकार प्रदान किये गये हैं । आज नारी जीवन के हर क्षेत्र में, चाहे वह शिक्षा, श्रम, राजनीति, उद्योग-धंधे एवं विभिन्न व्यवसाय का क्षेत्र हो या कोई अन्य क्षेत्र, महिलाएं पुरूषों के कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ने के लिए प्रयत्नशील हैं । बिहार में भी श्रमिक क्षेत्र में महिलायें पीछे नहीं हैं, लेकिन इस क्षेत्र में महिलाओं का अधिक शोषण हो रहा है । इसका कारण है शिक्षा का अभाव, सामाजिक कुरूति एवं सामाजिक पिछड़ापन तथा प्राचीन रूढ़िवादी परम्परायें, जिसके कारण वे अपने अधिकारों को प्राप्त करने में सर्वथा असहाय एवं अक्षम रही हैं । यद्यपि राज्य एवं केन्द्र सरकार ने महिला श्रमिकों के कल्याण एवं उनके सर्वांगीण विकास हेतु बहुत सारे कानून बनाये हैं । यदि वे कानून पूरी तरह लागू हो जायें तो, इस राज्य के श्रमिक क्षेत्र की महिलायें पूर्ण रूपेण शोषणमुक्त हो सकेंगी।

एक सर्वेक्षण के अद्यतन आंकड़े के अनुसार बिहार में करीब 75 लाख महिला श्रमिकों की संख्या है, जिसमें राज्य के संगठित क्षेत्रों में महिला श्रमिकों की संख्या बहुत कम है और 95 प्रतिशत महिला श्रमिक राज्य के असंठित क्षेत्रों में कार्यरत हैं । संगठित क्षेत्र की महिला श्रमिक शोषण एवं प्रताड़न की शिकार कम हैं । लेकिन असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिला श्रमिकों पर अधिक अत्याचार और शोषण हो रहा है और इस क्षेत्र के कुछ खंडों में उन्हें बंधुआ श्रमिकों की भांति जीवन-बसर करना पड़ रहा है । राज्य के असंगठित क्षेत्रों में निम्नलिखित मुख्य क्षेत्र आते हैं– खदान, कारखाना, बीड़ी-उद्योग, ईंट भटठा-निर्माण एवं सड़क-निर्माण, कृषि एवं सिंचाई का क्षेत्र, खाद्य सामग्री निर्माण का क्षेत्र, हथकरघा एवं कुटीर तथा गृह उद्योग, ईंट-पत्थर तोड़ने एवं क्रशर का क्षेत्र, निजी औषधालय एवं नर्सिंग होम, निजी शैक्षणिक संस्थाऐं आदि। इसके अतिरिक्त गृह कार्य, सफाई-कुटाई-पिसाई आदि के भी क्षेत्र हैं, जिसमें महिला श्रमिकों को नारकीय जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है ।

करीब दो-तीन वर्ष पूर्व बिहार सरकार के श्रम नियोजन एवं प्रशिक्षण विभाग के अधीन गठित समान पारिश्रमिक परामर्शदात्री समिति ने राज्य के असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिला श्रमिकों की स्थिति का सर्वेक्षण कर और एक प्रतिवेदन दिया था जिसके अनुसार राज्य के अधिकांश स्थानों के असंगठित क्षेत्रों में न तो समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 का अनुपालन हो रहा है और न ही न्यूनतम मजदूरी अधिनियम ही लागू है । समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 के अंतर्गत महिला श्रमिकों के लिए समान पारिश्रमिक के भुगतान का प्रावधान है । इस अधिनियम के तहत समान कार्य करने वाले पुरुष एवं महिला श्रमिकों के पारिश्रामिक में विभेद करना दंडनीय अपराध है । अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार किसी भी पद पर नियुक्ति के लिए महिला एवं पुरूष के बीच भेद-भाव दंड़नीय है । केन्द्र सरकार द्वारा अब तक 24 नियोजनों/प्रतिष्ठानों में इस अधिनियम के लागू करने के लिए अधिसूचना जारी की जा चुकी है । न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के तहत बिहार सरकार ने सभी असंगठित एवं सम्बंधित क्षेत्रों एवं प्रतिष्ठानों में कार्यरत श्रमिकों की न्यूनतम पारिश्रमिक की अधिसूचना जुलाई-अगस्त 1990 में जारी की । लेकिन समान पारिश्रमिक परामर्शदात्री समिति ने अपने सर्वेक्षण के दौरान उपरोक्त दोनों नियमों का किसी भी क्षेत्र में अनुपालन होते नहीं पाया ।

राज्य के बहुत बडे क्षेत्र में बीड़ी उद्योग में महिला श्रमिक कार्यरत हैं । पूरे राज्य में इस उद्योग में कम से कम 20 लाख महिला श्रमिक संलग्न हैं । लेकिन सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार इस बड़े क्षेत्र में महिला श्रमिकों का भीषण शोषण हो रहा है । उन्हें इतना कम पारिश्रमिक प्राप्त होता है जिसमें वे मुश्किल से दो जून की रोटी जुटा पाती हैं। उन्हें केवल 8 से 10 रुपये प्रति हजार बीड़ी बनाने के लिए पारिश्रमिक प्राप्त होता है जबकि न्यूनतम पारिश्रमिक अधिनियम के अनुसार उन्हें 21 रुपये प्रति हजार पारिश्रमिक मिलना चाहिए । इस उद्योग में पुरूष श्रमिकों को महिला श्रमिकों से ज्यादा पारिश्रमिक मिलता है ।

बीड़ी उद्योग की तरह अन्य असंगठित क्षेत्रों में भी महिला श्रमिकों की स्थिति अच्छी नहीं है । पत्थर तोड़ने एवं पीसने तथा क्रशर मशीन में कार्यरत महिलायें भी शोषण का शिकार हैं । उन्हें राज्य सरकार द्वारा निर्धारित प्रतिदिन 21 से 50 रु० पारिश्रमिक के स्थान पर मात्र 10 से 11 रुपये दिये जाते हैं । इसके अतिरिक्त उन्हें स्वास्थ्य रक्षा हेतु मशाक आदि नहीं दिया जाता है । अन्य स्वास्थ्य सुविधाएं भी उपलब्ध नहीं हैं । बांध निर्माण, कृषि एवं सिंचाई कार्य में संलग्न महिला श्रमिकों की भी स्थिति बदतर है । उन्हें बहुत कम पारिश्रमिक

दिया जाता है जिससे वे दो जून अपने परिवार का भोजन भी नहीं चला सकते। राज्य के सुदूर देहातों में तो केवल कुछ सेर अनाज पर ही उन्हें संतोष करना पड़ता है। राज्य सरकार की ओर से इस क्षेत्र में कार्यरत श्रमिकों की प्रतिदिन की न्यूनतम मजदूरी 24 रुपये प्रतिदिन है। सड़क-निर्माण एवं भवन-निर्माण की स्थिति बड़े-बड़े शहरों में तो ठीक है, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में इस क्षेत्र में भी महिला श्रमिक शोषण एवं प्रताड़ना की शिकार हैं। उन्हें पुरूष श्रमिकों के मुकाबले कम पारिश्रमिक मिलता है। असंगठित क्षेत्र के अंतर्गत ईंट-भटठे के निर्माण में तो महिला श्रमिकों का भीषण शोषण हो रहा है। राज्य सरकार की ओर से इस क्षेत्र में कार्यरत महिला श्रमिकों का पारिश्रमिक 20 रु० प्रति हजार की दर से है और उन्हें मात्र 11 से 12 रुपये प्रति हजार पारिश्रमिक प्राप्त होता है। इस क्षेत्र में आदिवासी महिलाओं को शारीरिक यातनाएं भी सहनी पड़ती हैं। इसके अलावा खाद्य सामग्री-निर्माण, गृह-कार्य, हथकरघा एवं कुटीर उद्योग तथा अन्य गृह उद्योग में भी कार्यरत महिला श्रमिकों की स्थिति दयनीय है। निजी अस्पताल, निजी शैक्षणिक संस्थायें, नर्सिंग होम एवं क्लिनिक्स में महिला श्रमिक काफी प्रताड़ित की जाती हैं और उन्हें राज्य सरकार द्वारा इस क्षेत्र के लिए निर्धारित न्यूनतम पारिश्रमिक अकुशल श्रमिकों के लिये 23 रुपये प्रतिदिन से बहुत कम मिलता है। इस प्रकार असंगठित क्षेत्रों में महिला श्रमिकों को न तो पेंशन, भविष्य निधि, ग्रेच्युटी, चिकित्सा आदि की सुविधायें उपलब्ध हैं न ही कभी छुट्टी उपलब्ध है और उस पर काम के अधिक घंटे।

महिला श्रमिकों को शोषण से मुक्ति दिलाने के उपाय

केन्द्र एवं राज्य सरकार के द्वारा महिला श्रमिकों के कल्याण सम्बंधी अधिनियमों का कड़ाई के साथ अनुपालन होने पर महिलायें शोषण मुक्त हो सकती हैं। राज्य के सभी असंगठित क्षेत्रों का सर्वेक्षण कराकर वहां न्यूनतम एवं समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 को कड़ाई के साथ लागू कराया जाय। सभी असंगठित क्षेत्र की महिला श्रमिकों को संगठित क्षेत्र में कार्यरत महिला श्रमिकों जैसी सुविधायें उपलब्ध होनी चाहिये। श्रम विभाग के अधिकारियों एवं राज्य के प्रशासन तंत्र को महिला श्रमिकों के हित संबंधी अधिनियमों का सख्ती के साथ अनुपालन करना चाहिए।

केवल सरकार की ओर मुखापेक्षी होने से महिला श्रमिक शोषण मुक्त नहीं हो सकती है। इसके लिए महिला श्रमिकों को भी संगठित होना पड़ेगा और जब वे संगठित हो जायेंगी तो अपने अधिकारों को अपने आप प्राप्त कर लेंगी। आज महिला श्रमिकों में चेतना एवं नेतृत्व का अभाव है, इस कारण उनका शोषण हो रहा है। अतः आवश्यकता है कि उनमें चेतना जगाई जाए और उन्हें उनके अधिकारों के बारे में बताया जाए।

24 सी, कंकड़बाग कालोनी
पटना–800020

पृष्ठ 25 का शेष

टेप रिकार्ड से निकलती है और दर्शकों को लगता है कि पुतली बोल रही है क्योंकि उसके होंठ हिलते हैं, पलक झपकती है और आंख नाचती है हालांकि यह आवाज उनके साथ मंच पर मौजूद वैट्रिलोकिस्ट निकालता है। वैट्रिलोकिस्ट विधि में ध्वनि एवं दृश्य का ऐसा खेल होता है कि जिसमें आवाज के मूल स्रोत को चतुरता से छिपा लिया जाता है। यही चतुराई दर्शक और श्रोता को आश्चर्य में डाल देती है।

दूरदर्शन के प्रातः कालीन प्रसारण में जी साहब भी तो कमाल की हरकतें करते हैं। सफल संचार के माध्यम के रूप में कठपुतली के विकास की दिशा में भारतीय जनसंचार संस्थान के अलावा एन.सी.ई.आर.टी. (राष्ट्रीय शैक्षिक, अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद) आदि ने बहुत कुछ किया है। किन्तु ग्राम-स्तरीय विकास कार्यकर्ताओं एवं संचारकों को इस तकनीक का लाभ नहीं मिल सका है।

आवश्यक नहीं है कि किसी भी विभाग या संस्थान में परंपरागत माध्यमों को प्रयोग में लाने के लिए स्टाफ ही रखा जाए या सांस्कृतिक दल ही नियुक्त हों। स्थानीय कलाकारों को अनुबंधित करके बेहतर और कम खर्च के कार्यक्रम भी कराए जा सकते हैं। कठपुतली आदि के खेल दिखाने वाले दलों को भुगतान करके भी चुने गए क्षेत्रों में विकास कार्यक्रमों के प्रति जनता की सही समझ और सोच को जागृत किया जा सकता है। किन्तु इसके लिए उपयुक्त संचार माध्यमों का बेहतर उपयोग करना जरूरी है, ताकि शहरी क्षेत्रों के साथ साथ ग्रामीण क्षेत्रों में भी सामाजिक-आर्थिक विकास की गति तेज हो सके।

एच-88, शास्त्री नगर
मेरठ-250005 (उ.प्र.)

कृभको

नई सफलताओं का सिलसिला

कृभको, जिस की स्थापना आधुनिक कृषि को विकसित करने तथा सहकारिता को सशक्त बनाने के लिए की गई थी, अपनी स्थापना के पहले दिन से ही 'सर्वप्रथम' स्थान प्राप्त करने की गौरवगाथा रही है।

प्रथम गुजरात में सूरत के निकट हजीरा में स्थित इसका बम्बई हाई/दक्षिण बासे की प्राकृतिक गैस पर आधारित विराट अमोनिया-यूरिया कॉम्प्लैक्स विश्व का सबसे बड़ा और अति आधुनिक उर्वरक संयत्र है।

प्रथम अपने वाणिज्यिक उत्पादन के प्रथम वर्ष अर्थात 1986 में कृभको के अमोनिया और यूरिया संयत्रों ने क्रमश 93.5% और 97.4% क्षमता उपयोग किया जो कि अपने प्रचालन के प्रथम वर्ष में एक विश्व रिकार्ड है।

प्रथम 1987-88 में कृभको का शुद्ध लाभ 126.8 करोड़ रुपये था जोकि देश में किसी उर्वरक संगठन द्वारा अब तक का सर्वाधिक है।

प्रथम कृभको अपने उर्वरक को केवल सहकारी और सरकारी संगठनों के माध्यम से बेचता है तथा इसका वितरण माध्यम सीमित है। 1989-90 में 20 लाख टन से अधिक विक्रय सचमुच अद्वितीय रिकार्ड के लिये शानदार उपलब्धि है।

कृषक भारती कोआपरेटिव लिमिटेड

रेड रोज हाउस 49-50 नेहरू प्लेस, नई दिल्ली-110019

खाद्यान्न उत्पादन में आत्म निर्भर भारत के लिए प्रयासरत

सामाजिक संस्थाएं एवं ग्रामीण विकास

□ डा० अभय कुमार □

आजादी के बाद ग्रामीण विकास की दृष्टि से देश में पंचवर्षीय योजनाएं एवं सामुदायिक विकास कार्यक्रम शुरू किये गये। इनके माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में नियोजित परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया गया। फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में विकास की दृष्टि से काफी परिवर्तन परिलक्षित हुए हैं। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में जन सहयोग प्राप्त करने हेतु पंचायती राज संस्थाओं को मूर्त रूप दिया गया है लेकिन अभी भी योजनाओं के निर्माण एवं कार्यान्वयन में जन सहयोग नगण्य ही है। अतः यह बहुत जरूरी है कि ग्रामीण क्षेत्रों के विकास हेतु चलायी जा रही योजनाओं के सफल संचालन हेतु मानवीय कारकों पर विशेष ध्यान दिया जाये। ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत सेवकों को जब तक ग्रामीण सामाजिक संस्थाओं के संबंध में सही जानकारी उपलब्ध नहीं होगी तब तक वे सामाजिक परिवर्तन के अभिकर्ता के रूप में सफल भूमिका नहीं निभा सकेंगे। ग्रामीण विकास के क्षेत्र में सामाजिक संस्थाओं की बाधाओं के कारण ग्रामीण विकास एवं निर्धनता निवारक योजनाओं के वांछित लाभ निर्धनतम व्यक्तियों तक नहीं पहुंच सके हैं।

आर्थिक प्रगति के लिए अनुकूल सामाजिक संस्थाओं का होना अत्यावश्यक है। कुछ विद्वान सामाजिक संस्थाओं से अर्थ सामाजिक वातावरण से लगाते हैं। उनकी दृष्टि में समाज के व्यक्तियों के मौलिक, धार्मिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक विश्वास ही सामाजिक संस्थाएं हैं जो व्यक्तियों के रहन-सहन, जीवन-यापन, कार्य प्रणाली आदि पर प्रभाव डालती हैं। सामाजिक संस्थाएं एवं आर्थिक विकास एक-दूसरे से सह संबंधित हैं। सामाजिक परिवर्तन आर्थिक विकास का साधन व साध्य दोनों ही है। जब द्रुत गति से आर्थिक विकास होता है तो सामाजिक संस्थाओं में भी परिवर्तन परिलक्षित होता है। उदाहरणस्वरुप यदि किसी गांव में बिजली एवं सिंचाई की सुविधाएं बढ़ा दी जायें तो उस गांव की अर्थव्यवस्था में परिवर्तन आ जाता है। कृषि तकनीकी में सुधार होता है। फसल रचना बदल जाती है। प्रति हैक्टेयर उत्पादन बढ़ता है। इससे उस गांव में कृषकों की आय बढ़ती है जिससे सामाजिक परम्पराओं व कार्य पद्धतियों में परिवर्तन आ जाता है। नवीन विचारों व संस्थाओं का विकास होता है जिससे विकास की गति में और तीव्रता आ जाती है। लेकिन कभी-कभी सामाजिक संस्थाएं आर्थिक विकास में बाधाएं भी पैदा करती हैं। यदि किसी देश में रहने वाले लोग रूढ़िवादी व भाग्यवादी हैं तो वे आर्थिक विकास कार्यक्रमों के प्रति उदासीन रहेंगे और उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक नहीं होगा। भारत की तीन-चौथाई आबादी गांवों में रहती है। वे कृषि में संलग्न हैं। गांवों में शिक्षा का स्तर निम्न है। लोग परम्परावादी हैं। गरीबी एवं बेरोजगारी अत्यधिक है। दुर्भाग्य से यहां की सामाजिक संस्थाएं ग्रामीण विकास के मार्ग में रूकावटें पैदा करती रही हैं। ग्रामीण विकास के मार्ग में बाधाएं लाने वाली मुख्य सामाजिक संस्थाओं का विवरण इस तरह है-

जातिवाद :- सामाजिक संस्थाओं में जाति प्रथा का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। जाति से अर्थ बहुत से परिवारों के एक समूह से है जिसका एक सामान्य नाम होता है जो सदा एक विशिष्ट व्यवसाय से संबंधित होता है जिसके सदस्य स्वयं को एक पूर्वज की संतान मानते हैं तथा जिसकी आर्थिक एवं सामाजिक मान्यताएं समान होती हैं। भारत में अनेक जातियां व उपजातियां हैं। प्रो० जे०एच० हट्टन ने अपनी पुस्तक "कास्ट इन इण्डिया" में भारतीय जातियों व उपजातियों की संख्या 2993 लिखी है। जाति प्रथा जहां समाज के विभिन्न वर्गों में उनकी सीमाओं, परम्पराओं व आदर्शों का सीमांकन करती है, वहीं यह समाज में संकीर्णता व दूषित वातावरण तैयार करने में अग्रसर है। भारत में जाति प्रथा व्यावसायिक गतिशीलता, वृहद उत्पादन, पूँजी निर्माण, श्रमिक संघ, प्रतिस्पर्द्धात्मक भावना, उत्पादकता, प्रशासनिक कार्य कुशलता, राष्ट्रीय एकता एवं समाजवादी समाज की स्थापना आदि के विकास में बाधा ही उपस्थित कर रही है। भूतपूर्व राष्ट्रपति स्व० सर्वपल्ली राधाकृष्णन के शब्दों में, "जो जाति प्रथा सामाजिक पतन को रोकने के लिए प्रारम्भ की गई थी दुर्भाग्यवश आज वह सामाजिक उन्नति में बाधक हो गई है।" स्व० पं० जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में, "भारत में जब तक जाति प्रथा की व्यवस्था रहेगी तब तक देश में न तो समाजवाद की स्थापना हो सकती है और न ही साम्यवाद की।"

आज देश में शिक्षा का प्रसार होने, शहरीकरण को बढ़ावा मिलने तथा अनेक कानूनों के क्रियान्वित होने से जाति प्रथा में अब वो कठोरता नहीं रही है लेकिन ये परिवर्तन सिर्फ शहरी क्षेत्रों तक ही

सीमित हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में स्थिति अभी भी यथावत् है। विद्वानों का अनुमान है कि जैसे-जैसे ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा का प्रसार होता जाएगा, वैसे-वैसे यहां भी जाति बंधन ढीले होते जाएंगे और इसका आर्थिक विकास पर अनुकूल प्रभाव पड़ने लगेगा।

संयुक्त परिवार प्रणाली:- संयुक्त परिवार प्रणाली का हिन्दू समाज में एक विशेष स्थान एवं महत्व है। संयुक्त परिवार प्रणाली से अर्थ एक परिवार के सभी पुरूषों का एक स्थान पर रहने, सम्मिलित भोजन करने, परिवार के सदस्यों की आय, व्यय, ऋण तथा सम्पत्ति का लेखा-जोखा संयुक्त रूप से रखने से है। यदि कोई व्यक्ति परिवार से अलग रहता है तो उसे बुरा समझा जाता है। भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली व्यावसायिक संरचना का महत्वपूर्ण अंग है। इस प्रथा से जहां उपभोग व्यय में कमी, श्रम विभाजन, साधनों का सर्वोत्तम उपयोग, सम्पत्ति विभाजन से रक्षा, पारिवारिक सहकारिता का विकास व सामाजिक सुरक्षा को प्रोत्साहन मिलता है वहीं दूसरी ओर अकर्मण्यता, व्यक्तित्व विकास, पारिवारिक अशान्ति, उद्यम, श्रम की गतिशीलता, पूँजी निर्माण आदि में बाधाएं भी उपस्थित कर रही हैं। अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार तथा पश्चात्य व्यक्तिवादी विचारधारा के प्रभाव के कारण संयुक्त परिवार प्रणाली प्रथा को लोग धीरे-धीरे छोड़ रहे हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षा प्रसार, परिवहन साधनों का विकास, औद्योगिक उन्नति, पारिवारिक कलह, व्यक्तिगत स्वतंत्रता की भावना आदि के कारण भी संयुक्त परिवार प्रणाली शिथिल होती जा रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी अधिकांश परिवार संयुक्त परिवार प्रथा से जुड़े हैं।

रूढिवादिता एवं सामाजिक रीतियां :- भारत की आर्थिक अवनति का मुख्य कारण रूढिवादी होना माना जाता है। इसी कारण आर्थिक विकास पर कुप्रभाव पड़ा है। इससे महत्वाकांक्षाएं कम हुई हैं और आर्थिक विकास आगे नहीं बढ़ पाया है।

भारतीय ग्रामीण समाज में जन्म से मृत्यु तक सामाजिक रीति-रिवाजों की प्रधानता देखने को मिलती है। लोगों के रहन-सहन, शादी-विवाह तथा अन्य बातें इन्हीं रीति-रिवाजों पर आधारित होती हैं। यहां अनेक रीति-रिवाज चलते हैं जैसे पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा, बाल विवाह, बहु विवाह प्रथा, भूमि के प्रति लगाव, त्यौहारों पर अत्यधिक व्यय, शादी-विवाह पर व्यय, मुंडन संस्कार आदि पर व्यय।

इन रीति रिवाजों के कारण लोगों को फिजूलखर्ची करनी पड़ती है जोकि भारत जैसे निर्धन देश के लोगों के लिए अहितकर है किन्तु इन सामाजिक रीति-रिवाजों के बंधन इतने कड़े हैं कि मनुष्य अवहेलना नहीं कर पाता। इन बुराइयों को कानून द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता।

स्त्री शिक्षा की कमी :- वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार हमारे देश की लगभग 52 प्रतिशत जनसंख्या ही साक्षर है। शिक्षा का अभाव भारत के आर्थिक विकास में सदैव एक बाधा रहा है और आज भी है, किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्री शिक्षा की स्थिति विशेष रूप से शोचनीय है। शिक्षा के आर्थिक महत्व से हम सभी भली प्रकार परिचित हैं। अशिक्षा के कारण स्त्रियां शोषण का शिकार बनी हुई हैं। उन्हें पुरूषों की दासता में रहना पड़ता है क्योंकि वे आर्थिक दृष्टि से पूरी तरह पुरूषों पर निर्भर होती हैं। अशिक्षित स्त्रियां अपने बच्चों के पालन-पोषण तथा मानसिक विकास में कोई सहयोग नहीं दे पातीं जिसके कारण देश में कुशल श्रमिक तथा कार्यकर्ता उपलब्ध नहीं हो पाते। यदि महिलाएं अधिक से अधिक शिक्षित हों तो जनसंख्या वृद्धि पर रोक हो सकती है तथा दहेज के लोभियों को सजा मिल सकती है। सती प्रथा स्वत: बंद हो जाएगी।

निष्कर्ष में जाति प्रथा, संयुक्त परिवार प्रणाली, उत्तराधिकार के नियमों तथा अन्य सामाजिक कुरीतियों का ग्रामीण भारत के आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव ही अधिक पड़ा है। ग्रामीण क्षेत्रों की दुर्दशा के लिए ये कुरीतियां कम उत्तरादायी नहीं हैं। बाल विवाह तथा विवाह की अनिवार्यत: जैसी मान्यताओं ने देश में जनसंख्या वृद्धि की समस्या खड़ी की तथा अपव्यय को भी प्रोत्साहित किया है।

वरिष्ठ प्रवक्ता, अर्थशास्त्र विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
ऋषिकेश (देहरादून)
उ०प्र०- 249201

उत्तर प्रदेश : असीमित जल स्रोतों के मध्य प्यासी भूमि

□ डा० राम अवतार शर्मा □

जल प्रकृति प्रदत्त एक ऐसी अमूल्य निधि है जो कि द्रव, ठोस व गैस तीनों अवस्थाओं में विद्यमान है और कभी भी नष्ट नहीं होती है। जल से ही जीवन मिलता है। जल संरक्षण व जल स्रोतों के नियमन व कुशल प्रबन्धन से आवश्यकतानुसार इसकी आपूर्ति की जा सकती है। अनियन्त्रित एवं प्राकृतिक रूप में जल प्रवाह के विनाशकारी परिणाम भी हो सकते हैं। इसलिए अधिकतम मानव कल्याण व समस्त जीव जन्तुओं के अस्तित्व के लिए जल संसाधन के विकास एवं नियोजन की परम आवश्यकता है। जल स्रोतों के सर्वोत्तम उपयोग के बिना कृषि, उद्योग, व्यापार एवं परिवहन आदि किसी भी क्षेत्र में प्रगति सम्भव नहीं है। विशेष रूप से कृषि प्रधान अर्थव्यवस्थाओं में जल संसाधनों का महत्व और भी बढ़ जाता है।

उत्तर प्रदेश अनेकों जल स्रोतों से सुसज्जित और विशाल जन समुदाय का मुख्यतः कृषि व्यवसाय से भरण-पोषण करने वाला राज्य है। जल संसाधन हेतु कम मात्रा में विनियोग की गयी पूँजी, नदी जल के समुचित नियमन के अभाव एवं अज्ञात जल स्रोतों की ओर अपर्याप्त ध्यान देने के कारण यह राज्य सदैव विनाशकारी बाढ़ों, भूमि क्षरण और सूखे आदि का शिकार रहा है। अदूरदर्शिता और प्रशासनिक उदासीनता के कारण जल प्रबन्धन के सम्बन्ध में अब तक कोई दीर्घकालीन नीति नहीं अपनायी जा सकी है। धरातलीय जल स्रोतों का कोई विवेकपूर्ण एवं लाभदायक उपयोग अभी तक सम्भव नहीं हो पाया है। धरातलीय जल अपने प्रवाह के साथ उपजाऊ मिट्टी को भी बंगाल की खाड़ी की ओर ले जाता है। भारतीय सिंचाई आयोग की रिपोर्ट के अनुसार भूमि के अन्तरतलीय जलाशय का भी व्यवस्थित संरक्षण तथा मानव हित में उपयोग नहीं हुआ है।

उत्तर प्रदेश में जल स्रोतों की विद्यमानता

प्रदेश के मैदानी क्षेत्र में गंगा, यमुना, रामगंगा, गोमती और घाघरा आदि प्रमुख नदियों के अतिरिक्त अनेक सहायक नदियां पश्चिम से पूर्व को बहती हैं। दक्षिण पश्चिम क्षेत्र में चम्बल, सिन्ध, सोन और केन आदि नदियां हैं जो कि इलाहाबाद तक गंगा में मिल जाती हैं। घाघरा नदी विशाल जल संचय के साथ बलिया में गंगा में विलीन हो जाती है। यदि प्रभावपूर्ण एवं व्यवस्थित ढंग से जल प्रबन्धन किया जाता है तो ये नदियां विशाल निर्जल एवं रेगिस्तानी क्षेत्र को भी हरा-भरा बनाने की क्षमता रखती हैं। उत्तर प्रदेश कई शताब्दियों से अब तक विशाल मात्रा में धरातल पर बहते हुए जल का सदुपयोग करने एवं उसे उचित दिशाओं में मोड़ने में असमर्थ रहा है जिसके कारण प्रत्येक वर्ष बाढ़ों से फसलों को विनाश, मानव संहार, मकानों की क्षति, पशुओं की मृत्यु, उत्तम व उपजाऊ मिट्टी का कटाव आदि की बर्बादी का प्रदेश सामना करता है और लगभग 18.7 लाख हेक्टेयर भूमि बाढ़ से जलमग्न व 9.5 लाख हेक्टेयर भूमि की फसल किसी न किसी रूप में बर्बाद हो जाती है। इससे प्रदेश को प्रतिवर्ष लगभग 28 से 75 करोड़ रूपये मूल्य की सम्पत्ति की हानि होती है तथा मानव जीवन लीला समाप्ति की तो गणना ही नहीं की जा सकती है।

यद्यपि गंगा, रामगंगा, गण्डक, बेतवा आदि नदियों के जल उपयोग पर योजनाएं प्रगति पर हैं और जल उपयोग तथा विद्युत निर्माण के लिये शारदा, सहायक रामगंगा, रिहन्द, टिहरी तथा मतेला आदि पर बांध बनाये जा रहे हैं तथापि भूमिगत जल स्रोतों के 28.54 लाख हेक्टेयर मी० जल को सिंचाई के उपयोग में लाने के लिए भारी मात्रा में विद्युत एवं अन्य ऊर्जा स्रोतों की आपूर्ति करना आवश्यक है। नैनीताल जिले में कोसी बेराज परियोजना, किसनपुर परियोजना, बरेली क्षेत्र में फतेहपुर दालामऊ परियोजना, बांदा में चिलीमल परियोजना, यमुना पम्प परियोजना, पंचेश्वर बाँध, लखेश्वर बाँध तथा किसान बाँध आदि महत्वपूर्ण परियोजनाएं पूरी होने को हैं। इन प्रयासों से यह निश्चित है कि प्रदेश सरकार जल संसाधन का उपयोग करने की दिशा में प्रयत्नशील है लेकिन आज भी उत्तर प्रदेश, देश के अन्य प्रगतिशील राज्यों की तुलना में बहुत पीछे है। प्रदेश के प्रत्येक क्षेत्र में पर्याप्त जल स्रोत विद्यमान हैं परन्तु अब तक दूर दराज की ग्रामीण जनता को पेयजल की आपूर्ति सुलभ नहीं हो पायी है। योजनाकाल में पेयजल समस्या को गम्भीरता से लिया गया है लेकिन आज भी प्रदेश की लगभग 33.4 लाख जनता पेयजल अपर्याप्तता एवं कमी की कठिन परिस्थितियों में जीवन यापन करती है।

सिंचाई आयोग के अनुमानों के अनुसार गंगा के बेसिन में लगभग 446 एम०ए० फुट धरातल पर जल बहता है जिसमें से लगभग 27 एम०ए० फुट उत्तर प्रदेश में हैं। इसमें से लगभग 160 एम०ए० फुट धरातलीय जल को सामान्य लागत पर उपयोग में लाया जा सकता है। लगभग 140 एम०ए० फुट जल मध्यम और वृहत इकाइयों और शेष छोटी इकाइयों के माध्यम से उपयोग कर सकते हैं। इस जल के द्वारा लगभग

बिहार में जवाहर रोजगार योजना की प्रगति

□ डॉ० शिवशंकर गुप्ता □

□ डॉ० देवेन्द्र प्रसाद □

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा था "भारत गाँवों में बसता है और जब तक गाँवों का विकास नहीं होता तब तक भारत का विकास नहीं हो सकता।" दुर्भाग्यवश ग्रामीण क्षेत्रों की गरीबी इस विकास के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। इस गरीबी का मूल कारण ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त बेरोजगारी तथा अर्द्ध बेरोजगारी है। यद्यपि इस समस्या से सम्पूर्ण राष्ट्र प्रभावित है किन्तु ग्रामीण बेकारी की दशा अत्यन्त दयनीय हो चुकी है।

ग्रामीण क्षेत्र के विकास और ग्रामीण बेरोजगारी दूर करने के लिए हमारी पंचवर्षीय योजनाओं में निरन्तर प्रावधान किए गए हैं और इसके लिए समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम आदि चलाए गए। इन सभी कार्यक्रमों का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी उन्मूलन के लिए ग्रामीण विकास के ऐसे कार्यक्रम को चलाना था जिससे ज्यादा से ज्यादा लोगों को रोजगार प्राप्त हो सके।

भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्री राजीव गाँधी देश में बेरोजगारी की समस्या से अत्यधिक चिन्तित थे। उनका कहना था "देश के सामने बेरोजगारी और अपूर्ण रोजगार से बढ़कर और कोई विकट समस्या नहीं है।" वे ग्रामीण जनता की बेरोजगारी और निर्धनता से भी काफी विचलित थे। उन्होंने इस संबंध में संसद में कहा था कि "हमारी जनता का कोई भाग ग्रामीण गरीबी से ज्यादा सुविधाहीन नहीं हैं। हमारी जनता का कोई तबका ग्रामीण परिवारों की महिलाओं विशेषकर भूमिहीन महिलाओं से ज्यादा जरूरतमंद नहीं है।" उन्होंने यह भी कहा था कि "ग्रामीण भारत की बेरोजगारी और अपूर्ण रोजगार प्राप्त जनता की परेशानियों को कम करना सबसे बड़ा राष्ट्रीय प्रयास है।"

पंडित जवाहर लाल नेहरू के जन्म शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर ग्रामीण बेरोजगारी पर सीधा और प्रत्यक्ष प्रहार करने के लिए स्व० राजीव गांधी ने 28 अप्रैल, 1989 को संसद में रोजगार की एक नवीन योजना— जवाहर रोजगार योजना— प्रस्तुत की। जवाहर रोजगार योजना पर 2,100 करोड़ रुपये व्यय करने का प्रावधान किया गया। इस योजना के पूर्व जो ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम चलाए गए थे वे देश भर के सभी ग्राम पंचायतों तक नहीं पहुंच सके थे। जवाहर रोजगार योजना को प्रत्येक ग्राम पंचायत तक पहुंचाने का लक्ष्य रखा गया।

यह योजना पहले से केन्द्र चालित राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एन.आर.ई.पी.) और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (आर.एल.ई.जी.पी.) के स्थान पर नई योजना है। इस योजना को एक अप्रैल 1989 से लागू किया गया है।

जवाहर रोजगार योजना के उद्देश्य

1. इस रोजगार कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य देहातों में बेरोजगार और जरूरतों से कम रोजगार वाले पुरूषों एवं महिलाओं दोनों के लिए अधिक रोजगार सृजन करना।
2. ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले गरीब लोगों की आय में वृद्धि करने के उद्देश्य से आर्थिक और सामाजिक आधारभूत सुविधाओं का सृजन करना।
3. ग्रामीण जीवन का गुणात्मक विकास करना।

इस योजना के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए स्व० राजीव गांधी ने कहा था कि "इस कार्यक्रम का उद्देश्य देश भर में ग्रामीण पंचायतों के हाथों में पर्याप्त धन राशि देना है, जिससे वे भारी संख्या में ग्रामीण गरीबों के हित में, जो ग्रामीण भारत का एक बड़ा भाग है, स्वयं अपनी ग्रामीण रोजगार योजनाएं चला सकें। यह अनुमान लगाया गया है कि पिछले सात वर्षों के दौरान ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम देश भर की 55 प्रतिशत ग्राम पंचायतों तक ही पहुंचे हैं। जवाहर रोजगार योजना का लक्ष्य प्रत्येक पंचायत तक पहुंचना है।"

योजना की प्रमुख विशेषताएं

(1) जवाहर रोजगार योजना पर 2,100 करोड़ रूपये व्यय करने का प्रावधान है।

(2) इस योजना पर आने वाले कुल व्यय का 80 प्रतिशत केन्द्र सरकार और 20 प्रतिशत राज्य सरकार वहन करेंगी।

(3) इस योजना के द्वारा सम्पूर्ण भारत में 440 लाख निर्धनता रेखा के नीचे के परिवारों के कम से कम एक सदस्य को रोजगार दिया जायेगा।

(4) जवाहर रोजगार योजना के क्रियान्वयन का दायित्व ग्राम पंचायतों का होगा। तीन से चार हजार तक की जनसंख्या वाली एक

ग्राम पंचायत को प्रति वर्ष 80 हजार रुपये से एक लाख रुपये तक प्राप्त होंगे ।

(5) योजना के अन्तर्गत निर्धनता रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे प्रत्येक ग्रामीण परिवार के कम से कम एक सदस्य को उसके घर के निकट कार्य-स्थल पर प्रतिवर्ष 50 से लेकर 100 दिन का रोजगार प्राप्त हो सकेगा ।

(6) इस योजना के अन्तर्गत जितना रोजगार सृजित होगा उसका 30 प्रतिशत महिलाओं के लिए आरक्षित कर दिया जायेगा ।

(7) रोजगार देने में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जन जाति के लोगों को प्राथमिकता दी जायेगी ।

(8) पूर्व के वर्ष से चल रही सभी ग्रामीण रोजगार योजनाओं एवं राष्ट्रीय कार्यक्रमों का विलय जवाहर रोजगार योजना में कर दिया जायेगा। खानाबदोश जन-जाति को रोजगार दिलाने वाली एकीकृत योजनाओं को इस कार्यक्रम में सम्मिलित कर लिया जायेगा ।

(9) इस योजना के अन्तर्गत धन राशि का आबंटन राज्यों को, वहाँ निवास कर रही जनसंख्या की निर्धनता की सघनता के आधार पर किया जायेगा और इसका आधार पिछड़ापन होगा ।

(10) कार्यक्रम में विशिष्ट भौगोलिक संरचना वाले क्षेत्रों जैसे– पर्वतीय, मरूस्थलीय तथा द्वीप समूह की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विशेष ध्यान दिया जायेगा ।

(11) इस योजना के अन्तर्गत जो भी विकास रोजगार सृजन के कार्यक्रम चलाए जायेंगे वह ग्राम पंचायतों के द्वारा ही चलाएं जायेंगे ।

(12) जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत कोई भी काम ठेके पर नहीं होगा । इस योजना के अन्तर्गत सभी काम स्थानीय श्रमिकों या लाभान्वितों की समिति द्वारा होंगे ।

(13) योजना के सफल कार्यान्वयन के लिए प्रक्रियाओं को सरल बनाया जायेगा ।

(14) कार्यक्रम का अमल इतना अधिक खुला और साफ-सुथरा होगा कि प्रत्येक ग्रामवासी को यह मालूम होगा कि कार्यक्रम के लिए कितनी रकम उपलब्ध है और कौन-कौन सी योजनाओं पर यह रकम खर्च की जायेगी । वह यह भी जानकारी रखेगा कि इन योजनाओं पर कौन-कौन उसके गाँव वाले काम कर रहे हैं । रोजगार हासिल करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को मालूम होगा कि वह कितना पारिश्रमिक ले रहा है और अन्य लोग कितना ले रहे हैं । उसे यह भी मालूम होगा कि अन्य लोगों को कितने-कितने दिनों का कार्य दिया जा रहा है ।

पूर्व की रोजगार योजनाओं से श्रेष्ठ

पूर्ववर्ती रोजगार योजनाओं यथा, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना, ग्रामीण प्रत्याभूत योजना, ग्रामीण युवकों की स्वरोजगार योजना आदि से यह योजना भिन्न एवं श्रेष्ठ है, जो निम्न विवेचन से स्पष्ट है :-

जवाहर रोजगार योजना एवं इसके पूर्ववर्ती रोजगार सृजन की योजनाओं में मुख्य भिन्नता इस बात की है कि पहले की योजनाओं में पूरा प्रशासनिक तंत्र किसी न किसी रूप में संलिप्त था लेकिन जवाहर रोजगार योजना के अधीन पंचायतों को योजना में सक्रिय भागीदार बनाया गया है और ग्रामसभा के माध्यम से समस्त ग्रामीणों को योजना के चयन एवं कार्यान्वयन में सक्रिय हिस्सा लेने का अवसर दिया गया है । इसी विशेषता के कारण यह अन्य रोजगार योजनाओं से श्रेष्ठ है । इस योजना में पहली बार भारत में ग्राम पंचायतों को इतने महत्वपूर्ण वित्तीय साधन देकर परियोजना के क्रियान्वयन का दायित्व दिया गया है ।

इस योजना में जो भी धन राशि आबंटित की जायेगी वह केन्द्र सरकार द्वारा सीधे जिलों को दिया जायेगा । राज्य सरकार द्वारा भी अपने हिस्से का अंशदान जिलों को दिया जायेगा ।

योजना में किए जाने वाले काम

जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत ग्राम पंचायत किसी भी ऐसे काम को चुन सकती है। जो ग्राम सभा में सलाह करके तय किया गया हो और गाँव के हित के लिए हो । जहां तक संभव हो सके, ऐसे काम पहले शुरू किए जाने चाहिए, जिससे टिकाऊ आर्थिक स्वरूप की उत्पादक परिसम्पत्तियाँ बने । इस योजना में किए जाने वाले कार्यों के कुछ उदाहरण निम्न हैं :-

(i) भूमि विकास तथा परती या बंजर भूमि का विकास, (ii) सामाजिक वानिकी कार्य, (iii) निजी भूमि पर पेड़ लगाना, (iv) अनुसूचित जाति /जनजाति सहित आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को लाभ पहुंचाने वाले कार्यक्रम, (v) इन्दिरा आवास योजना में मकान बनाना, (vi) 10 लाख कुओं की योजना या अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति एवं मुक्त बन्धुआ मजदूरों के लिए सिंचाई कुएं, (vii) भूमि तथा पानी संरक्षण कार्य, (viii) सामुदायिक सिंचाई कुएं बनाना एवं उसकी मरम्मत करना, (ix) मध्यम तथा मुख्य निकासी नालियां बनाना तथा इसकी मरम्मत करना, (x) खेत की नालियां बनाना तथा उनकी मरम्मत करना, (xi) बाढ़ से बचाव का काम, (xii) पानी की निकासी तथा पानी इकठ्ठा न होने देने वाले काम, (xiii) सामुदायिक स्वच्छ शौचालय बनाना, (xiv) ग्रामीण सम्पर्क सड़के बनाना, (xv) प्राथमिक

कहानी

अधूरी मेहनत

□ सलमान ज़मीर □

ऊदल की खरीफ की फसल इस साल बहुत अच्छी थी । हरे-भरे धान के पौधे जब खेत में लहराते तो उसका मन खुशियों से भर जाता । उसे विश्वास था कि इस बार भी उसकी फसल बहुत अच्छी होगी । बालियां लगने का समय आ रहा है । कुछ ही दिनों में सुनहरी कोमल बालियां निकल आयेंगी और जब उनसे भीनी-भीनी सुगन्ध उठेगी तो किस का मन खुशी से नहीं नाच उठेगा । यह सोचकर ऊदल का मन प्रफुल्लित हो उठा ।

आकाश में काले बादल छा गये थे । हवा में ठंडक आ गई थी। ऐसे में ऊदल का मन गाने को होने लगा उसके होठों पर एक मधुर लोकगीत मचलने लगा । ऊदल के होठों पर गीत यों ही नहीं आ गया था । उसने अपने खेतों में दिन-रात मेहनत की थी । तब जाकर उसके पसीने की बूंदें मोती बनकर उगी थीं । उसे अपने कर्म पर विश्वास था, गर्व था और शायद इसीलिए उसे भविष्य के बारे में पूरा भरोसा भी था ।

अपने हाथ में जिसका वर्तमान हो वह भविष्य के सुनहरे सपने बुनता ही है । ऊदल भी खेत की मेंड़ पर चलता हुआ सोच रहा था, इस बार वह अपना रहट अवश्य लगवायेगा, उसे हर बार सिंचाई के लिए एक मोटी रकम अदा करनी पड़ती है । कई बार ऐसा भी होता है कि रहट खाली न होने के कारण उसे समय से पानी नहीं मिल पाता और पौधे पानी के अभाव में सूखने लगते हैं ।

इस बार वह रहट अवश्य लगवायेगा । इस उधेड़ बुन में वह चला जा रहा था । वह बार-बार की परेशानी और झंझट से बच जायेगा। रहट होने पर वह अपने खेतों में समय से पानी लगायेगा तथा आस-पास के खेतों में, जो गांव के अन्य लोगों के हैं, उसी के रहट से पानी लगायेंगे, जिससे उसकी आय भी हो जायेगी ।

बच्चों के लिए वह इस बार नये कपड़े भी ले देगा । पिछली बार नहीं ले पाया था, घर की मरम्मत में काफी पैसे खर्च हो गये थे। इस बार गीता के लिए भी एक अच्छी सी साड़ी ले देगा । वह जब भी मुखिया की पत्नी को देखती है तब कोई अच्छी साड़ी ला देने को बार-बार कहती है ।

मुखिया की याद आते ही उसे यह भी याद आ गया कि जब से मुखिया का बेटा शहर से रेडियो लाया है, तब से हर शाम को उसे सुनने के लिए मुखिया के दरवाजे भीड़-सी लगी रहती है । स्वयं ऊदल का मन ललकता है कि वह भी एक रेडियो ले ले और ....।

उसकी विचार श्रृंखला टूट गयी । वह गिरते-गिरते बचा । उसका पैर मेड़ में धंस गया था । वह बड़बड़ाया "धत तेरे की ...."

"क्या हुआ बेटा" थोड़ी दूर पर अपने खेतों में काम कर रहे किशन ताऊ ने ऊदल की आवाज सुनकर पूछा,

"ये चूहे भी जहां देखो वहां बिल बना लेते हैं । लगता है पूरी मेड़ ही खोखली कर डाली है ।"

"मैं भी परेशान हूं इन चूहों से बहुत दवाई रखी, लेकिन इनकी संख्या घटती ही नहीं ।" किशन ताऊ ने दूर से ही कहा ।

ऊदल मिट्टी झाड़ता हुआ किशन ताऊ के पास आ गया और बोला "क्या कर रहे हो ताऊ ?"

"यह मेड़ कमजोर हो गई है । सोचा पत्थर लगाकर मजबूत कर दूं । बाढ़ का क्या भरोसा कब आ जाए । शाम को खेत सही सलामत छोड़ कर जाओ, सुबह आकर देखो तो पता चलता है कि सारी फसल बह गयी ।" ऊदल को याद आया, उसके खेत की भी मेड़ कमजोर हो गई है । चूहों ने खोदकर खोखली कर दी है। कई दिन पहले वह देख गया था । अभी-अभी उसका पैर धंस गया था । इतनी कमजोर मेड़ बाढ़ को नहीं रोक पायेगी और पानी मेड़ तोड़ कर खेत में घुस जायेगा । फिर फसल को बरबाद होने से कोई बचा पाएगा ? उसने पत्थर मंगा लिये है । उन्हें केवल मेड़ पर लगाना है । जरा देर का काम है और वह पिछले कई दिनों से इसे टालता आ रहा है ।

"क्या सोचने लगे ?"

"मेड़ तो मुझे भी अपनी मजबूत करनी थी । सोचता हूं कल कर डालूं ।"

"जल्दी क्या है ?"

"बाढ़ का क्या भरोसा ?" ताऊ ने कहा ।

"अरे ताऊ, अभी इतनी बारिश नहीं हुई कि बाढ़ आ जाए । फिर एक दिन में कौन सी प्रलय आ जायेगी ?"

"भाई मैं तो यही जानता हू कल करे सो आज कर, आज करे सो अब ....।"

"छोड़ो भी, ताऊ कल कर लूंगा।"

"जैसी तेरी मरजी।"

किशन ताऊ अपने काम में लग गये। ऊदल घर की तरफ चल पड़ा। उसका और किशन ताऊ का खेत मिला हुआ है। खेतों में थोड़ी ही दूरी पर नदी बहती है जिससे सिंचाई के लिए बहुत आसानी रहती है। लेकिन बरसात में जब यही नदी बढ़ जाती है तो बड़ी कठिनाई आ जाती है। मेड़ें टूट जाती हैं, फसलें बह जाती है।

बाढ़ से बचने के लिए नदी की तरफ खेतों के किनारें मेड़ बना दी गयी है। मिट्टी की मेड़ कभी-कभी जल प्रवाह की शक्ति को नहीं रोक पाती और टूट जाती है। इसलिए इस बार मेड़ पर पत्थर लगाने थे। किशन ताऊ ने तो अपनी मेड़ पर पत्थर लगा भी दिए हैं। उसी की मेड़ बचती है, वह भी कल अवश्य मेड़ पर पत्थर जमा लेगा।

ऊदल निश्चिंत होकर घर आ गया और दूसरे कामों में लग गया। आसमान में काले-काले बादल घुमड़ रहे थे।

शाम होते-हाते मूसलाधार वर्षा होने लगी। इतनी तेज बारिश कि कुछ ही देर में गांव के गड्ढे, ताल-तलैया उथल कर बहने लगे। फिर भी बरिश की गति धीमी नहीं हुई। सारी रात वर्षा होती रही। ऊदल को रह रहकर मेड़ का ख्याल आ जाता।

सुबह वर्षा का जोर कुछ कम हुआ। ऊदल भीगता हुआ खेत की ओर भागा। उसे अपने पर क्रोध आ रहा था। अगर उसने मेड़ पहले ही मजबूत कर ली होती तो आज उसे इस प्रकार परेशान न होना पड़ता। बेफ्रिक होकर घर पर आराम कर सकता था।

उसकी आशंका सही थी, दूर से खेत की हालत देखकर उसे लगा कि वह बेहोश होकर गिर पड़ेगा। मेड़ टूट गई थी और नदी का पानी उसके खेत में घुस आया था। फसल कट-कट कर बह रही थी। उसके आलस्य के कारण उसकी सारी मेहनत अधूरी रह गई। उसे चक्कर आने लगा और फिर ऊदल अपना सिर थाम कर वहीं बरसते पानी में धम्म से बैठ गया।

अन्वेषक,
जिला ग्राम्य विकास अभिकरण
बरेली (उ.प्र.)

वैज्ञानिक खेती

□ भानु प्रताप सिंह □

भोर भई हल लेके चला
एक किसान अपने घर से
पग-पग आगे बढ़ ही रहा था
कि उमंग एक उठी दिल में
क्यों न करें हम भी खेती
अबकी वैज्ञानिक विधि से।

सही समय पर खेत जोतकर
बीज जरा बोयें ढंग से
खाद, पानी की खुराक
देते रहें समय-समय से
आओ मिलकर खेती करें
अबकी वैज्ञानिक विधि से।

निराई, गुडाई और देखरेख
हम खूब करें तन-मन से
रोग लगे यदि फसलों में तो
उपयोग करें कीटनाशकों के
आओ अपना भाग्य लिखें
अबकी वैज्ञानिक विधि से।

रेडियों पर नित कृषि-चर्चा
और टी.वी. पर कृषि-दर्शन देखें
उचित सुझावों को अबकी
आओ हम भी अजमाके देखें
वैज्ञानिक विधि की खेती को
एक बार जरा अपनाके देखें।

ग्राम व पोस्ट– कालाकाँकर
जिला– प्रतापगढ़
पिन कोड– 229408 (उ०प्र०)

स्वास्थ्य और सौंदर्य का राज़ अब छिपा नहीं है।
दुनिया की लाखों महिलायें इसे जानती हैं।

आप ही इससे वंचित क्यों रहें?

2 रुपये
प्रति पैकेट

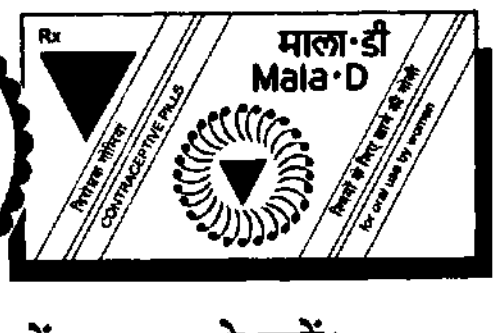

माला-डी के विषय में डाक्टर से पूछें।

davp 91/222

भारत में ग्रामीण बेरोजगारी

□ मनोज कुमार श्रीवास्तव □

भारत की जनसंख्या ने यहां की अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित किया है। किसी भी देश की जनसंख्या वहां की विकास प्रक्रिया को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत की जनसंख्या का 80 प्रतिशत भाग ग्रामीण क्षेत्रों में रहता है। इस बात में भी कोई सन्देह नहीं की कृषि, भारत में मुख्यतः श्रम प्रधान रही है, उसमें तकनीकी ज्ञान की कमी भी रही है, इसीलिए यहां प्रति हेक्टेयर उत्पादन भी कम है। एक अनुमान के अनुसार यहां गेहूं का प्रति हेक्टेयर उत्पादन मात्र 3.1 किलो है जबकि डेनमार्क जैसे देश में यह प्रतिशत 41.6 है।

जब श्रम की मांग की अपेक्षा श्रम की पूर्ति अधिक होने लगती है तो बेरोजगारी की समस्या का जन्म होता है। भारत में ग्रामीण बेरोजगारी महत्वपूर्ण समस्या है। छठी पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में लगभग 2 करोड़ व्यक्ति बेरोजगार थे जबकि योजना काल के दौरान इसमें 3 करोड़ व्यक्ति और बढ़ गये। लेकिन सरकार ने सातवीं योजना में 4 करोड़ लोगों को रोजगार देने का लक्ष्य निर्धारित किया था। एक सर्वेक्षण के अनुसार सन् 1990 में लगभग 30 करोड़ लोगों के लिए रोजगार के अवसर उपलब्ध कराये गये। आठवीं योजना में रोजगार का लक्ष्य 6.5 करोड़ निर्धारित किया गया है। इस तरह ग्रामीण क्षेत्रों में श्रम की समस्या के समाधान के लिए अतिरिक्त रोजगार निर्मित करने हेतु बहुत बड़ा भाग ग्रामीण क्षेत्र पर ही निर्भर है।

देश में बेरोगजारी कुछ तो मौसमी प्रकृति की है लेकिन कुछ अदृश्य बेरोजगारी भी है। मौसमी बेरोजगारी का तात्पर्य यह है कि फसलों के उत्पादन के समय तो उन्हें रोजगार उपलब्ध होता है लेकिन शेष समय वे बेरोजगार हो जाते है। अदृश्य बेरोजगारी में किसी काम पर आवश्यकता से अधिक आदमियों को लगाया जाता है अर्थात जिस काम को दो आदमी ही कर सकते हैं उस काम पर चार या पांच आदमियों को लगा दिया जाए। यद्यपि इससे उत्पादन तो उतना ही होता है लेकिन परिश्रम अधिक लोगों को करना पड़ता है और आय पर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

पिछले चार दशकों में कृषि से सम्बन्धित क्षेत्रों एवं प्राथमिक क्षेत्रों में सकल देशी उत्पाद निश्चित रूप से घटा है। उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार 1989 में यह दर घट कर 35 प्रतिशत रह गयी जबकि 1950 में 56.5 प्रतिशत था। जहां तक सकल देशी उत्पाद में श्रमिकों की हिस्सेदारी की बात है तो उसमें आंशिक परिवर्तन ही हुआ है। सन् 1951 में यह 72 प्रतिशत था जबकि 1981 में 69 प्रतिशत रह गया।

भारतीय कृषि असंगठित है तथा यहां कृषि के तरीके अवैज्ञानिक हैं। यद्यपि पिछले वर्षों में इसमें सुधार हुआ है लेकिन अच्छे बीज, खाद तथा सुधरे हुए यन्त्रों के अभाव में प्रति हेक्टेयर उत्पादकता अन्य देशों की तुलना में यहां बहुत कम है जिससे आय कम होती है और फलस्वरूप लोगों को रोजगार उपलब्ध नहीं हो पाता।

भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के आरम्भ में ही बेरोजगारी की मात्रा प्रत्येक योजना के अन्त में बढ़ती रही है। पहली योजना में लगभग 53 लाख बेरोजगार व्यक्ति थे जिनमें ग्रामीण बेरोजगारों की संख्या 28 लाख थी, इसी प्रकार द्वितीय योजना में यह संख्या 80 लाख, तृतीय योजना में 96 लाख, चौथी योजना में 2.29 करोड़ हो गयी। इस प्रकार यद्यपि योजनाओं में बेरोजगारी कम करने का लक्ष्य रखा जाता है लेकिन उसमें सफलता किस हद तक प्राप्त होती है, यह आंकड़ों से स्पष्ट है।

इसके अतिरिक्त पिछले कुछ वर्षों में सकल देशी उत्पाद की विकास दर में वृद्धि हुई है लेकिन इसके साथ ही रोजगार वृद्धि दर, जनसंख्या में वृद्धि दर की अपेक्षा बहुत कम रही है। 1972 से 1977 तक के दौरान रोजगार वृद्धि दर लगभग 2.82 प्रतिशत कम हुई है।

ग्रामीण बेरोजगारी के दो प्रमुख कारण और भी हैं, ग्रामीण क्षेत्रों में श्रम की अनियमितता में निश्चित रूप से वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त बहुसंख्यक सीमांत भूमि के स्वामी जो कि अब अधिकांशतः मजदूरी पर काम करने वाले श्रमिकों पर निर्भर रहने लगे हैं। इसलिए उद्योगों के तीव्र विकास के लिए योजनाओं का निर्माण करते समय ग्रामीण श्रम बल को रोजगार के ज्यादा अवसर उपलब्ध कराने की बात को ध्यान में रखना चाहिए।

यही नहीं अभी तक उपलब्ध आंकड़ों के अध्ययन से पता चलता है कि रोजगार की लोच में भी कमी आयी है जो कि स्पष्ट करती

है कि कृषि पैदावार और गैर कृषि उत्पादकता की पूंजीगत लागत में वृद्धि हुई है और कृषि पैदावार अधिक मंहगा हो गया है जिसमें सिंचाई, रासायनिक उर्वरक, बिजली आदि में व्यय अधिक हुआ है। इसका कारण भूमि की अल्प उत्पादकता और पर्याप्त सिंचाई सुविधाओं का न होना भी है जो सीधी तरह से रोजगार के अवसरों में वृद्धि किए बिना ही उत्पादन प्रक्रिया की पूंजीगत लागत को बढ़ाती है।

इसलिए ग्रामीण बेरोजगारी को दूर करने के लिए आवश्यक है कि लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास किया जाए क्योंकि ये उद्योग श्रम गहन होते हैं और बड़े पैमाने पर रोजगार के अवसर उपलब्ध कराते हैं। इसके साथ ही जनशक्ति का नियोजन भी आवश्यक है जिससे देश में श्रमिकों की मांग के अनुसार उन्हें प्रशिक्षित किया जा सके और वे तकनीकी कार्यों को कर पाने में समर्थ हो सकें।

भारत के कुल कृषि क्षेत्र में से 14.30 करोड़ हेक्टेयर भूमि वर्षा पर निर्भर करती है। रोजगार बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि शुष्क क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाया जाए तथा कृषि का समन्वित विकास किया जाए। यद्यपि 1970-71 में शुष्क भूमि विकास योजना की शुरूआत की गयी लेकिन अभी अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है।

बाहर के कुछ देशों में कृषि के साथ-साथ डेरी-फार्मिंग व्यवसाय भी चलाया जाता है जिससे ग्रामीणों को रोजगार मिलता ही है, आय का अतिरिक्त साधन भी उपलब्ध होता है। इसी प्रकार भारत में भी डेरी-फार्मिंग को कृषि व्यवसाय का एक अंग बनाया जाना चाहिए जिससे अधिक से अधिक ग्रामीणों को रोजगार मिलेगा।

जहां तक सम्भव हो उत्पादन और संसाधन विकास की पूंजीगहन तकनीकों के स्थान पर श्रम गहन तकनीकों का विकास किया जाए। जवाहर रोजगार और रोजगार गारण्टी योजना को और भी अधिक प्रभावशाली, उपयोगी और विस्तृत किया जाना चाहिए। कृषि का एक अच्छा वातावरण बनाया जाए जिससे अधिक से अधिक उत्पादन प्रोत्साहित हो। इसके लिए आंचलिक योजनाएं भी बनायी जा सकती हैं। कृषि नीति का उद्देश्य उत्पादन तकनीकों और कार्यप्रणाली को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए जो कि देश में स्थाई निधि अनुपातों से समन्वय स्थापित कर सकें। सिर्फ इतना ही नहीं मानव संसाधन विकास, तकनीकी ज्ञान और कौशल निर्माण सम्बन्धी योजनाएं बना कर उन्हें कड़ाई से लागू कराया जाए तभी ग्रामीण बेरोजगारों को रोजगार पाने में समर्थ बनाया जा सकेगा।

आनन्द मार्ग स्कूल के पास
दक्षिणी बेतियाहाता,
गोरखपुर—273001
उत्तर प्रदेश

लेखक समाज को नई दिशा दें

—डॉ० गिरिजा व्यास

सूचना और प्रसारण उपमंत्री डा०. गिरिजा व्यास ने विगत फरवरी को नई दिल्ली में आयोजित एक समारोह में बाल पत्रिका 'नन्दन' के सम्पादक श्री जयप्रकाश भारती और सात अन्य लेखकों को वर्ष 1990 के 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पुरस्कार' से सम्मानित किया। श्री भारती को उनकी पाण्डुलिपि 'बालक, बाल साहित्य और पत्रकारिता' के लिए 25,000 रुपये नकद पुरस्कार स्वरूप भेंट किये गए।

यह पुरस्कार भारत सरकार के सूचना और प्रसारण मंत्रालय की ओर से जनसंचार माध्यमों—जैसे पत्रकारिता, पुस्तक प्रकाशन, विज्ञापन, प्रसारण और फिल्म आदि — विषयों पर हिन्दी में मौलिक लेखन के लिए हर वर्ष दिया जाता है।

इस अवसर पर डॉ० गिरिजा व्यास ने सूचना और प्रसारण मंत्रालय के प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकों का लोकार्पण करके प्रकाशन विभाग के स्वर्ण जयंती वर्ष समारोहों का शुभारम्भ भी किया।

समारोह में भारी संख्या में उपस्थित लेखकों, पत्रकारों और विद्वानों को सम्बोधित करते हुए डॉ० गिरिजा व्यास ने लेखकों से देश के सामने मौजूद चुनौतियों को स्वीकार करने और समाज को नई दिशा देने का आह्वान किया। उन्होंने कहा कि आज हमें जिस प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है वह पहले भी थीं लेकिन आर्थिक चुनौती, राजनीतिक चुनौती, देश का बिखराव और उससे भी बड़ा मनुष्य के मन के आपसी बिखराव ने हमें उस चौराहे पर खड़ा कर दिया है, जहां एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को गैर समझने लग गया है। अपने भाषण में डॉ० गिरिजा व्यास ने हिन्दी के प्रसार-प्रसार में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के योगदान पर भी प्रकाश डाला।

इस अवसर पर हिन्दी के सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री अक्षय कुमार जैन, सूचना और प्रसारण मंत्रालय के सचिव श्री महेश प्रसाद और प्रकाशन विभाग के निदेशक पद्मश्री डॉ० श्याम सिंह शशि ने भी अपने विचार व्यक्त किये। डॉ० शशि ने पुस्तक प्रकाशन के क्षेत्र में प्रकाशन विभाग की उपलब्धियों का उल्लेख करते हुए कहा कि विभाग ने हिन्दी के अलावा अन्य भारतीय भाषाओं में भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित करने का निर्णय लिया है तथा पिछले वर्ष तेलुगु, बंगला और मलयालम में मौलिक रूप में से लिखी गई अनेक पुस्तकें प्रकाशित की गई हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पुरस्कार योजना के तहत 15,000 रूपये का दूसरा पुरस्कार विज्ञान प्रगति के सहायक सम्पादक श्री मनोज कुमार पटोरिया को उनकी पुस्तक 'हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता' के लिए और 10,000 रुपये का तीसरा पुरस्कार श्री केशव चन्द वर्मा को उनकी पुस्तक 'शब्द की साख' के लिए प्रदान किया गया। इसके अतिरिक्त पांच-पांच हजार रुपये के पांच मानक पुरस्कार भी दिए गए।

थार के मरूस्थल में भी हरियाली संभव

□ वासुदेव पालीवाल □

सामान्यतः थार मरूस्थल का नाम सुनते ही मस्तिक में एक ऐसी तस्वीर घूम जाती है, जिसमें न तो हरे-भरे खेत हैं और न पेड़-पौधे। लेकिन अब यह तस्वीर बदल रही है। वैज्ञानिक अन्वेषणों व तकनीक ने थार को अब नया जीवन दिया है, जिसमें लहलहाते खेत भी हैं और छायादार वृक्ष भी।

जहां तक मिट्टी का प्रश्न है तो बलुआ मिट्टी की सतह जुताई के लिए बहुत अच्छी होती है, लेकिन जल व पोषक तत्वों के रिसाव के कारण यह उपयोगी सिद्ध नहीं हो पा रही है। यदि अधिक श्रृंखला वाले कार्बनिक यौगिकों का उपयोग किया जाए तो इस रिसाव को रोका जा सकता है, क्योंकि इनके प्रयोग से मिट्टी की रासायनिक संरचना बदल जाती है तथा उसमें जल व पोषक तत्वों की पर्याप्त मात्रा बनी रहती है। वैज्ञानिकों की राय है कि 50 सेंटीमीटर गहराई पर कार्बनिक रसायनों व उर्वरकों के प्रयोग से बालुई रेत की भौतिक संरचना व पानी के गुण में अपेक्षित सुधार संभव है।

रेगिस्तान का अत्याधिक उतार-चढ़ाव वाला तापमान भूमि की नमी को प्रभावित करता है। बालुई भूमि में नमी सदैव गैसीय अवस्था में रहती है। पौधों के विकास और स्थायित्व हेतु इस नमी का संरक्षण करना अत्यावश्यक हो जाता है। यह संरक्षण मलचिंग या अन्य किसी तकनीकी प्रबंध द्वारा सफलता पूर्वक किया जा सकता है। इसके लिए दोहरी दीवार वाले मिट्टी के गमलों का उपयोग भी किया जा सकता है। इस गमले से अस्सी फीसदी से भी अधिक पानी की बचत संभव है।

वैज्ञानिकों ने बलुआ मिट्टी में राख का उपयोग किए जाने की आवश्यकता भी प्रतिपादित की है। बलुआ मिट्टी में 8 से 10 प्रतिशत तक राख का उपयोग किए जाने से उसकी नमी में 7.9 से 12.4 प्रतिशत तक की वृद्धि होती है।

पौधे के नीचे की सतह और मृदा में मुल्तानी मिट्टी को साथ मिलाकर चारों ओर बिछाने से भी भूमि का रिसाव रोक कर पचहत्तर प्रतिशत नमी का संरक्षण किया जा सकता है। इस विधि से नाइट्रोजन का रिसाव भी कम हो जाता है।

रेगिस्तान में प्रायः जल का अभाव रहता है। अतः वैज्ञानिक जल के अधिकतम उपयोग हेतु घड़ा विधि से सिंचाई करने का सुझाव देते हैं। इस विधि में घड़ों में पानी भरकर उन्हें मुंह तक मिट्टी में दबा दिया जाता है। घड़े का पानी धीरे-धीरे रिस कर सिंचाई के उपयोग में आता रहता है। इस विधि से जहां 90 प्रतिशत तक पानी की बचत होती है, वहीं लवण युक्त पानी भी फसलों के लिए उपयोग में आ सकता है। यह तकनीक फलों व सब्जियों के उत्पादन में काफी उपयोगी रहती है।

बलुआ मिट्टी की एक और समस्या यह है कि गर्मी के कारण यह जल्दी सूखकर कठोर हो जाती है, लेकिन यदि बुवाई से पूर्व 15 सेंटीमीटर गहराई तक जमीन को नरम बना दिया जाए तो इसमें बीजों का अंकुरण आसानी से हो जाता है।

बलुआ मिट्टी में फास्फोरस की मात्रा काफी अधिक होती है, लेकिन पौधे उसे सीधे ग्रहण नहीं कर पाते हैं। यदि कवक खाद व गंधक का इस्तेमाल किया जाए तो पौधे मिट्टी से फास्फोरस ग्रहण कर लेते हैं।

हमारे देश में 70 लाख हेक्टेयर भूमि की बलुआ मिट्टी क्षारीय होने के कारण कृषि के अनुपयोगी साबित हो रही है। जिप्सम चूर्ण व सोडियम मिश्रित जल का उपयोग करके इस क्षारीय भूमि से प्रति हेक्टेयर 12 क्विंटल गेहूं की फसल उपजायी जा सकती है।

जिप्सम व सल्फर की जगह पायराइट का उपयोग भी किया जा सकता है। पायराइट का प्रयोग जिप्सम व सल्फर के समान ही उपयोगी व उससे सस्ता साबित हुआ है।

सामान्यतः फसल उत्पादन के बाद उसके बचे हुए अवशेषों पर किसान कोई ध्यान नहीं देते हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि इन अवशेषों को भूमि में दबा दिया जाना चाहिए ताकि सड़कर यह अवशेष भूमि में कार्बनिक तत्वों की पूर्ति कर सके।

पोकाती पाड़ा,
जैसलमेर (राज०)

आर.एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : (डी (डी एल) 12057/92
पूर्व भुगतान के बिना डी.पी.एस.ओ. दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

RN/708/57
P & T Regd. No. D (DL) 12057/92
Licenced under U (DN) 55
to post without pre-payment at DPSO, Delhi-54

डा. श्याम सिंह शशि, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और
वीरेन्द्रा प्रिंटर्स, हरध्यान सिंह रोड, करोल बाग
नई दिल्ली-110005 द्वारा मुद्रित